मनहर चौहान

मृत्यु-भोज

तथा अन्य वैज्ञानिक कहानियां

मनहर चौहान की ओर से

हिन्दी में वैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि की कथा-रचनाएँ न के बराबर लिखी जाती हैं। विज्ञान के युग में रह कर विज्ञान के ही प्रति जो अन्धता हिन्दी के साहित्यकार बरत रहे हैं, वह विचित्र और दुखद है। हिन्दी का अधिकांश लेखन फैशन के अनुरूप ही होता है। विज्ञान की बात करना अभी 'असाहित्यिक' माना जाता है। क्यों माना जाता है? *क्योंकि माना जाता है! हिन्दी की अधिकांश मूल्यांकन-धारणाएँ,* इसी शैली में पूर्वाग्रह-जनित ही हैं। ऐसी स्थिति किसी भी भाषा का सर्वांगीण विकास नहीं होने दे सकती।

विज्ञान की चर्चा को जब 'साहित्यिक' माना जाए, तभी मैं इस दिशा में सक्रिय होऊँ, इस बन्धन को स्वीकार न करते हुये, अभी ही, विनम्रता के साथ, भारतीयकृत वैज्ञानिक कथानकों का यह संग्रह प्रस्तुत कर रहा हूं। 'मृत्यु-भोज' उपन्यास मूल रूप में बहुत बोझिल रचना थी। उसे हिन्दी में लाते समय स्वयं अपनी कल्पना से काफी अधिक सहायता ली है। शेष कथानक भी अनुवाद न होकर, भारतीय-करण हैं। *भारतीय पाठक को दृष्टि में रखकर कथाक्रम में,* आवश्य-कतानुसार, परिवर्तन मैंने किये हैं। सब रचनाएँ अंग्रेजी से ली हैं। अंग्रेजी लिखने वालों के बीच विज्ञान-चर्चा को 'असाहित्यिक' मानने का फैशन पनपा नहीं है। इसीलिए वे एक-से-एक बढ़िया चीजें इस क्षेत्र में भी लिखते जा रहे हैं। उन्हीं के अनुप्रेरण से प्रस्तुत यह पुस्तक हिन्दी के पाठकों को बिल्कुल नए तरह का रोमांच अनुभव करा सकेगी, ऐसा विश्वास मुझे है। राय लिखिएगा—जरूर!

—मनहर चौहान

एल—१४, कीर्तिनगर,

कथा क्रम :

मुरली जब कार में अपने घर की ओर रवाना हुआ, तो बीच-रास्ते में
क अजीब-सा अहसास मिला उसे—कि कोई ऐसी चीज उस की जेब में आ
ई है, जिसकी जानकारी स्वय उसी को नही।

'लेकिन यह असम्भव है। मेरी जानकारी के बिना, मेरी ही जेब में कोई
चीज कैसे सरकाई जा सकती है?' उसने स्वयं से कहा।

किन्तु ज्यों-ज्यों घर नज़दीक आया, वह विचित्र अहसास और-और तीखा
होता गया। सच पूछें तो, उस अहसास की शुरुआत कोई दो घण्टे पहले हो
चुकी थी, किन्तु तब वह आज के जितना तीखा नहीं था। इसीलिए मुरली ने
उसे काफ़ी आसानी से नकार दिया था। आज? आज नकारना असम्भव-सा
लग रहा था। मुरली ने अपने संयम को ज्यादा-से-ज्यादा समेटने की चेष्टा
की, ताकि जेब में हाथ डालकर देखने की अपनी इच्छा को वह दबा सके।
'जेब में कुछ है ही नहीं फिर हाथ डालकर देखने की जरूरत क्या है?' मुरली
स्वयं को बार-बार समझा रहा था।

किन्तु न चाहते हुए भी उसकी निगाह अपनी पेण्ट की दाहिनी जेब पर
चली गई। वह जेब एक जगह से फूली हुई थी—मानो कोई नन्ही-सी गेंद हो
भीतर। मुरली देखता रह गया। उसे अच्छी तरह याद था कि गेंद जैसे आकार
की कोई चीज उसने जेब में रखी ही नहीं थी। फिर, जेब क्यों फूली हुई है।

मुरली ने उस फूले हुए हिस्से को दबाकर देखा। भीतर की वह गोल, रहस्य-
मय चीज ठोस और गोल कठोर मालूम पड़ी अब मुरली से न रहा गया। जेब में
हाथ डाल ही दिया उसने। ठण्ड के दिन थे— वह ऊनी दस्ताने पहने हुए था।
दस्तानों के कारण वह ठीक-ठीक न जान सका कि उस गोल, रहस्यमय चीज
का स्पर्श कैसा है, किन्तु निश्चय ही वह चीज कठोर थी—ठोस चाहे हो न हो।
मुरली ने उस चीज पर, जेब के भीतर-ही-भीतर, उंगलियां रगड़ कर देखीं।
चिकनी नहीं थी वह चीज। ऊबड़खाबड़ थी वह, किन्तु उस ऊबड़खाबड़पन में
भी एक अजीब-सी व्यवस्था, एक विचित्र-सी लय थी।

तो, पिछले दो हफ्तों से जो अहसास शुरू हुआ था, वह झूठा नहीं था। आज वह ठोस रूप में सामने आ ही गया। अहसास—कि कोई उसका पीछा कर रहा है। किन्तु जब भी मुरली ने पलट कर देखा, पीछे कोई नहीं था। किस अदृश्य व्यक्ति का था वह अहसास? और वह क्यों आ रहा था पीछे-पीछे?

लगता था—जाने क्यों ऐसा लगता था—जैसे वह अदृश्य व्यक्ति, किसी विशेष उद्देश्य से, मुरली की जेब में हाथ डालना चाहता है। क्यों? पता नहीं क्यों! और वह था कौन? पता नहीं कौन था! दो-दो हफ्तों से, बराबर, उस का अहसास मिल रहा था, किन्तु मुरली उस की परछाईं भी नहीं देख सका था। क्या वह कोई अदृश्य प्रेत था? लेकिन प्रेतों का अस्तित्व मानव अब स्वीकार कहाँ करता है। दुनिया कितनी आगे बढ़ चुकी। ब्रह्माण्ड-यात्राओं ने कितनी तरक्की कर ली है! पृथ्वी पर कितने भीमकाय और सक्षम संगणक—कम्प्यूटर—तैयार हो चुके हैं! पच्चीसवीं सदी के इस युग में भला कोई प्रेतों पर विश्वास करना चाहेगा? और वह भी, मुरली जैसा होशियार इन्जीनियर?

अदृश्य व्यक्ति द्वारा पीछा किए जाने का अहसास मुरली को उस वक्त स से ज्यादा होता था, जब वह 'परल' संगणक के किसी रास्ते से गुजरता 'परल' संगणक! विश्व की सबसे नाजुक, सबसे बड़ी और सबसे द यान्त्रिक स्थापना—'परल'! तो क्या उस विचित्र अहसास के पीछे 'परल' का हा माना जाए? लेकिन 'परल' क्यों चाहेगा अपने प्रमुख इन्जीनियर को सताना क्या वह अपने प्रमुख इन्जीनियर से कोई मजाक करना चाहता है? मुर मुस्करा दिया था अपनी इस कल्पना पर। 'परल' में इतनी बुद्धि है ही नहीं वह किसी भी मानव को सताना या छकाना चाहे। 'परल' केवल एक य है। वह अपनी बुद्धि का परिचय तभी दे सकता है, जब मानव की ओर से भाँति-भाँति के संकेत मिलें। मानव के सहयोग के अभाव में वह किसी जैसा ही है।

लेकिन, किसी के द्वारा पीछा किए जाने का अहसास, 'परल' के रास्ते से गुजरते समय ही, सबसे ज्यादा क्यों होता था? अहसास न केवल पी किए जाने का, बल्कि इस बात का भी कि कोई है—कोई अदृश्य व्यक्ति शक्ति है—जो मुरली की जेब में घुसके से कुछ सरका कर

चुपके से सरकाई जा चुकी उस गोल चीज़ को मुरली ने जेब से निकाल लिया। असंख्य बिन्दुओं को जोड़ने वाली असंख्य छोटी-छोटी सीकें-सी बनी हुई थी उस गोलाकार में। किस धातु का बना हुआ था वह गोलाकार, मुरली एक निगाह में न समझ सका। चलती कार में उसने उस चीज़ को हथेली में घुमा-घुमा कर देखा, फिर वापस जेब में रख लिया। अब इस सारी बात पर वह घर पहुँचने के बाद ही विचार करना चाहता था। चलती कार में यदि वह विचारों के भंवर में फंस जाता, तो दुर्घटना हो सकती थी।

कार गैरेज में बन्द करके उसने घर में प्रवेश किया। उस चीज़ को जेब से निकाल कर उसने मेज़ पर रख दिया। जब वह जूते, मोजे, कोट और दस्ताने उतार रहा था, उसकी निगाह उसी गोलाकार पर जमी हुई थी। प्लेटिनम जैसी किसी रहस्यमय, सफेद धातु से बनी हुई थी वह चीज़। शायद वह प्लेटिनम की ही कोई मिश्र-धातु थी। दस्तानों को सोफे पर फेंक कर मुरली ने उस गोलाकार को उठा लिया।

—और इस के साथ ही उसके पूरे शरीर में एक अजीब-सी झिनझिनाहट हुई। चिनगारियों जैसा स्फुलिंग उसकी रग-रग में उबल पड़ा। उसे कुछ समझ में न आया कि क्या हो रहा है। कोई अज्ञात प्रेरणा उससे कह रही थी कि छोड़ दो इस गोलाकार को, फेंक दो इस विचित्र चीज़ को—लेकिन प्रेरणा के आदेश का पालन करने में वह समर्थ था ही नहीं। अनजाने में ही वह चीज़ उसकी मुठ्ठी में ज़ोर से भिंच गई थी। लगा कि जैसे सारी दुनिया गोल घूम रही है। फिर, सहसा, मुरली को अजीब-अजीब आवाज़ें सुनाई देने लगीं। जिस तरह् कोई तीर छूटने के साथ सनसनाता है, उसी तरह वे आवाज़ें सनसनाती हुई गुज़र रही थीं और मुरली एक शब्द भी समझ नहीं पा रहा था। कौन-सी भाषा थी वह? अचानक एक दबाव-सा चारों तरफ से महसूस हुआ-- आवाज़ों की अदृश्य दीवार का दबाव मुरली बेहोश होकर गिर गया। गिरते-गिरते भी वह उस गोलाकार को मुट्ठी में भींचे हुए था। चेतना के अन्तिम क्षणों में उसने उस रहस्यमय चीज़ को काफी गर्म महसूस किया। वह गरमाहट मुरली के पूरे बदन में रेंगती जा रही थी।

जब वह होश में आया, तब भी वह गरमाहट उसकी रग-रग में जीवित थी। लगता था, कोई अदृश्य और अलौकिक पर्दा-सा बिछा हुआ है—गरमाहट

उत्सुक और चिन्तित आवाज ने कोई सवाल-सा पूछा। मुरली कसमसा उठा। बड़ी कोशिश करके उसने आँखें खोल दीं।

वह व्यक्ति किसी ऐसी जगह खड़ा था कि आँखें खोल देने के बावजूद मुरली उसे न देख सका। मुरली ने अपना चेहरा घुमाना चाहा, किन्तु वह सफल न हो सका।

"बहुत अच्छे!" उस अनदेखे व्यक्ति ने, प्रशंसा के स्वर में तुरन्त कहा, "अब आँखें बन्द कर लीजिए।"

वह स्वर इतना आज्ञावाही था और साथ-साथ, उसमे आत्मीयता भी इतनी अधिक थी कि मुरली उसकी उपेक्षा न कर सका। उसने आँखें बन्द कर लीं।

"सुन्दर! बहुत अच्छे।" वही स्वर पुन: सुनाई दिया, "आँखें फिर खोलिए भला!"

आँखें खोल कर मुरली ने अपने चेहरे पर झुकी आ रही उस छाया को पहचानने की चेष्टा की। सफलता तो मिल गई उसे, लेकिन परिणाम लगभग निराशाजनक रहा—उसने अपने निजी डाक्टर को सामने खड़े देखा।

"हूँ···तो आप वापस हमारे बीच आ गए!" डाक्टर ने प्रसन्नता से कहा।

मुरली ने जवाब में कुछ कहने के लिए मुँह खोला, किन्तु स्वर न फूट सका। तालू, जीभ, गला—सब इस बुरी तरह सूखा हुआ-सा लग रहा था कि जैसे भीतर कोई रेगिस्तान पैदा हो गया हो। डाक्टर के हाथ में, न जाने किधर से, एक गिलास आ गया था, जिसमें न जाने कौन-सा रंगहीन तरल भरा हुआ था। गिलास मुरली के होंठों की ओर बढ़ाते हुए डाक्टर बुदबुदाया, "इसे पी लीजिए। धीरे·"

वह तरल सारे मुँह और गले में चुभता हुआ-सा, घूँट-घूँट, गुजर रहा था। अवश्य उसमें कोई ऐसी दवा मिलाई गई थी, जो चुभ रही थी। या, चुभन का कारण शायद यह भी हो कि भीतर एक रेगिस्तान-सा पैदा हो गया था। दोनों ही सूरतों में, वह तरल आखिर एक तरल था, जिसने मुरली को जल्दी-जल्दी राहत देना शुरू कर दिया।

दस मिनट बाद वह अपने पलंग पर उठ कर बैठ चुका था। और उसे तेज भूख लगी हुई थी। उसकी वाणी लौट आई थी। खाने योग्य कोई चीज वह अत्यन्त आग्रह के साथ माँग रहा था। "नहीं, अभी कुछ भी खाने को नहीं मिलेगा।" यह स्वर था उसकी स्नेहशील पत्नी का, "डाक्टर का आदेश है।" मुरली चुप हो गया। बीसेक मिनट बीते होंगे कि फिर से मुरली को गहरी नींद आ गई। ज़रूर उस तरल में कोई नशीली चीज थी···

अन्ततः, जब नींद खुलने पर मुरली ने डटकर भोजन किया, तो कई विचित्र बातें उसके सामने आईं। सबसे पहली बात तो यह थी कि वह लगातार तीन दिनों तक बेहोश रहा था। दूसरी बात—उसका समूचा दाहिना हाथ अगणित सफेद दागों से भरा हुआ था। वे दाग ऐसे थे, मानो तीव्र चिनगारियों की झुलसन दागों के रूप में शेष रह गई हो। तीसरी बात—शारीरिक रूप से मुरली अपने आपको इतना चुस्त और जोशीला महसूस क रहा था, मानो अचानक उसकी उम्र पन्द्रह साल घट गई हो। शाम व डाक्टर आया। देर तक मुरली उसके साथ बातें करता रहा। आशकाएँ अने थी और समाधान असन्तोषजनक। "मेरा ख्याल है कि आपको सूर्य-दंश ; गया था···" डाक्टर ने कहा, "सूर्य-दंश में कई-कई दिनों तक बेहोशी अजू नहीं मानी जाती। जिस उम्र से आप गुज़र रहे हैं और आपके स्वास्थ्य ' जो स्थिति है, उसे देखते हुए, यदि आप तीन दिनों तक बेहोश रहे तो इ चौंकने जैसा कुछ नहीं है। रही बात इसकी कि आप स्वयं को बहुत चु और जोशीला क्यों महसूस कर रहे हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह स्थि असाधारण है, लेकिन···मेरा अनुमान है कि इसमें भी चौंकने जैसा ; नहीं है। सारी चुस्ती, सारा जोश आपके तन में नहीं, मन में है। ल बेहोशी को आपका अज्ञात मन नकार देना चाहता है—इसीलिए आप म सिक रूप से जोश में आ गए हैं। आपका शरीर, किन्तु काफी कमज़ोर है। ' को पूरा आराम लेना चाहिए।"

"और ये जो दाग हैं मेरे दाहिने हाथ पर ?" मुरली ने बाँह प हुए पूछा।

डाक्टर के चेहरे पर उलझन की रेखाएँ तैर आईं। "ये दाग मेरे लिए भी रहस्यमय हैं।" उसने कहा, "क्या आपको पूरा विश्वास है कि ये पहले से नहीं थे?"

"नहीं, ये पहले से नहीं थे।" कहते हुए मुरली ने उस नाजुक कॉर्नर-टेबल पर रखी उसी रहस्यमय, गोल चीज की ओर संकेत कर दिया, "क्या इन दागों का कारण वह गेंद हो सकती है?"

"अजी नहीं! भला किसी गेंद से ऐसे दाग पड सकते हैं? आपकी मुट्ठी में से वह गेंद खुद मैंने निकाल कर वहाँ रखी थी। मेरे हाथ पर तो कोई दाग नहीं पड़ा।" और डाक्टर मुस्कराने लगा।

"क्या बेहोशी में भी मेरी मुट्ठी कसी हुई थी?"

"हाँ।"

"जब गेंद आपने उठाई, क्या कुछ भी महसूस नहीं हुआ आपको?" मुरली की आँखें डाक्टर पर टिकी थीं।

"महसूस होने से आपका क्या मतलब है, मैं नहीं समझा…" डाक्टर ने पुनः उलझन में पड़ते हुए कहा, "आप उस गेंद के प्रति इतने उत्सुक क्यों हैं?"

"कुछ नहीं। यों ही।" मुरली ने टालना चाहा। गेंद का रहस्य वह डाक्टर को देना नहीं चाहता था। मुरली समझ चुका था कि सारे बदन में झिनझिनाहट जैसा अहसास देने की गेंद की क्षमता केवल एक बार के ही लिए थी। झिनझिनाहट…बेहोशी…आवाजें…यह सब केवल एक बार ही हो सकता था उस गेंद के माध्यम से, जो कि मुरली के साथ हो चुका था। अब वह गेंद किसी भी मामूली धातु की गेंद जैसी ही थी। लेकिन क्या अर्थ था, क्या उद्देश्य था उस झिनझिनाहट और बेहोशी का? उन भेद-भरी आवाजों का?

"आप टाल रहे हैं।" डाक्टर का स्वर सुना मुरली ने।

"नहीं, नहीं, टालने की इसमें क्या बात है! यह गेंद दरअसल 'परम' गणक का एक फालतू पुर्जा है। अनजाने में मैं उसे अपनी जेब में रख कर घर से आया था। मुरली ने कहा, "जब मैं अचानक बेहोश हुआ, तब, संयोगवश,

इ गेंद मेरे हाथ में थी। इसी लिए ऐसा लगा कि शायद उस गेंद में कोई भेद हो…लेकिन मैं जानता हूँ कि ऐसा नहीं हो सकता। मैंने वह सवाल ों ही पूछ लिया था। उसका कोई अर्थ नहीं था।"

किन्तु डाक्टर मुरली की ओर अविश्वास से ताक रहा था। सहसा डाक्टर उठ पड़ा और कॉरनर-टेबल तक पहुँच गया। झुक कर उसने उस गोल रहस्यमय चीज़ को उठा लिया। मुरली ध्यान से देख रहा था—डाक्टर पर उस चीज़ के स्पर्श का कोई असर नहीं हुआ था। धातु की उस गेंद को लिए हुए डाक्टर वापस पलग के पास आया और बुदबुदाया, "बेहोशी में भी आप इसे ऐसे जकड़े हुए थे, मानो इसके साथ जीवन-मरण का सवाल जुड़ा हो। काफी जोर लगाने के बाद ही मैं इसे आपकी मुट्ठी में से निकाल सका था। अब आपने इसे लेकर…अजीब-सी कुछ बातें कही हैं…मैं समझ नहीं पा रहा… कि…

"आप व्यर्थ ही सचेत हो गए हैं, डाक्टर!" मुरली हंसा, "मैंने वे बातें यों ही कह दी थीं। उनका कोई अर्थ नहीं था। क्या आप सोचते हैं, मैं उस पुर्जे से डरता हूँ? लाइए उसे मैं अभी अपने हाथ में ले लेता हूँ।"

और हिम्मत के साथ मुरली ने सचमुच वह गेंद हाथ में ले ली। मैं कुछ भी न हुआ। भिनभिनाहट, बेहोशी, विचित्र आवाजें—कुछ नहीं।

"अब यदि इजाजत हो तो मैं इसे तकिये के नीचे रख लूँ।"मुरली ने विजयिनी दृष्टि से देखा डाक्टर की ओर।

"आप की मरजी।"

मुरली ने उस गोलाकार को अपने तकिए के नीचे सरका दिया। फिर पूछा, "बिस्तर से उठने की इजाजत कब मिलेगी मुझे?"

"अभी कम-से-कम हफ्ते भर नहीं।"

"लेकिन डाक्टर, मैं इतना चुस्त और स्वस्थ महसूस कर रहा हूँ कि…

"मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह आपका भ्रम है। अवचेतन मन आप को धोखा दे रहा है।"

डाक्टर चला गया। मुरली ने तकिए के नीचे से धातु की वह गेंद निकाली और गद्दे पर रख ली। अविश्वासभरे रोमांच के साथ वह देखता रहा उसकी ओर। मुरली जानता था कि सूर्य-दंश का शिकार वह नहीं हुआ था। मुरली यह भी जानता था कि धातु की वह गेंद 'यरल' का कोई फालतू पुर्जा नहीं थी।

'चलती कार से जब मैंने इस गेंद को छुआ था, तो कुछ नहीं हुआ था मुझे—क्योंकि मैं दस्ताने पहने हुए था। घर आकर जब मैंने दस्ताने उतार कर इसे छुआ, मेरे तमाम बदन में एक अजीब-सा अहसास फैल गया।' मुरली मन-ही-मन बुदबुदाया, 'क्या भेद है उस अहसास का ? क्या मेरे तन-मन में कोई नई शक्ति आ गई है ? या, मेरे भीतर की कोई ऐसी क्षमता गायब हो चुकी है जिसका अभी स्वयं मुझे ही कोई पता नहीं ? मेरे दाहिने बाजू के सफ़ेद दाग़ों का क्या अर्थ है ? क्या मैं किसी विचित्र षड्यन्त्र का शिकार बनाया जा रहा हूँ ? लेकिन क्यों ? और किसके द्वारा ?'

गद्दे पर रखी हुई उस धातु-गेंद की ओर मुरली अपना चेहरा झुकाता चला गया—जब तक कि गेंद आँखों के एक दम पास न आ गई। कितनी सूक्ष्म संरचना थी उस गेंद की ! असंख्य-असंख्य-असंख्य सूक्ष्म बिन्दियाँ⋯प्रत्येक दो-दो बिन्दियों के बीच खिंची हुई एक-एक बारीक रेखा⋯सफ़ेद-सफ़ेद-सफ़ेद⋯ क्या है यह ?

क्या है यह ? क्या ? क्या ? क्या ?

मुरली अचानक बुरी तरह भयभीत हो गया। चिनमिनाहट, बेहोशी और विचित्र आवाज़ों वाली वह क्षमता इस गेंद में फिर से पैदा होने वाली है—इस अहसास ने मुरली को दबोच डाला। मुरली उस गेंद पर इस तरह झुका हुआ था कि उसकी कूबड़-सी निकल आई थी। एक झटके के साथ वह सीधा तन कर बैठ गया।

पलंग से सटी हुई नन्ही-सी पेग-टेबल रखी थी, जिस पर पड़ी एक पेन्सिल मुरली के ध्यान में आई। मुरली ने पेन्सिल उठा कर उसकी नोक से धातु-गेंद को कोंचना शुरू कर दिया। अपने हाथ से उस विचित्र गेंद को छूने में डर लग रहा था मुरली को—हालांकि अभी-अभी वह पूरी मज़बूती से उसे छू

चुका था। पेन्सिल की नोक का धक्का दे कर मुरली ने वह गेंद पलंग से नीचे गिरा दी। खणणणण! गेंद की धातु फर्श पर बज उठी। गेंद लुढ़कती हुई दूर जाने लगी। मुरली की भयभीत निगाहें उसका पीछा करती रहीं। 'शायद इस गेंद में विस्फोट होने वाला है। पता नहीं, यह क्या चीज है!' सोचता हुआ मुरली सिहरने लगा था।

लुढ़कती गेंद फर्श पर स्थिर हो चुकी थी।

खिडिक्!—यह कैसी आवाज ? मुरली ने एकदम हड़बड़ा कर पीछे देखा—उसकी पत्नी चाय की ट्रे उठाए हुए प्रवेश कर चुकी थी। मुरली ने एक गहरी साँस ली। खिडिक् की वह आवाज़ दरवाज़ा खुलने की रही होगी। मुरली मुस्करा दिया। उसकी पत्नी, बन-ठन कर जोरों से मुस्करा रही थी नज़दीक आती हुई बोली, "बैठे न रहिए, लेट जाइए, थक जायेंगे।"

वह चुपचाप लेट गया रजाई उसने छाती तक खींच ली। पत्नी चाय की ट्रे को मेज पर रख चुकी थी। उसने चाय के दो कप तैयार किये। एक उस ने लेटे हुए पति को थमा दिया और दूसरा स्वयं ले लिया। चुस्की खींचती हुई वह पुनः मुस्करा उठी, हालांकि चुस्की खींचना कोई ऐसी बात नहीं थी कि जिस पर मुस्कराया जा सकता।

"डाक्टर के अनुसार···आपको पता ही नहीं है कि आप कितने थके हुए हैं।" वह बोली।

"हूँ।"

"क्या ऐसा भी हो सकता है कि किसी को अपनी थकान का गुर ही पता न चले ?"

"शायद।" मुरली ने धीमे से कहा। वह चुस्कियाँ लेता रहा। पत्नी पलंग की पाटी पर बैठ चुकी थी, "जो भी है, हमें डाक्टर को गलत नहीं मानना चाहिए।"

मुरली चुप रहा।

"अरे!" अचानक उसकी पत्नी पाटी पर से उठ पड़ी। चाय का कप अपने हाथ में सन्तुलित रखे हुए वह उस दिशा में बढ़ी, जिधर, फर्श पर, वह गेंद स्थिर हो चुकी थी। पत्नी ने झुककर गेंद को उठा लिया। मुरली ने यह

देखा। आशंका से मुरली की आँखें फैल गयी। कहीं ऐसा न हो कि उठाने के साथ ही गेंद धड़ाम से फट जाए।

गेंद न फटी।

पत्नी ने उसे उसी कॉरनर-टेबल पर रख दिया, जहाँ मुरली ने, अपनी बेहोशी दूर होने के साथ, उसे पहली बार देखा था।

पत्नी वापस पलंग की तरफ़ आती हुई बुदबुदा रही थी, "कॉरनर-टेबल पर से वह गेंद गिर कैसे गई ?"

"पता नहीं।"

"गिरने की आवाज़ तो हुई होगी।"

"शायद ! मुझे नहीं मालूम।"

"क्या है वह चीज़ ?"

"एक फालतू पुर्ज़ा।"

"फेंक दूँ ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"सुन्दर है—है न ?"

"हाँ, है तो सुन्दर ! उसकी डिज़ायन में एक अजीब-सा-सम्मोहन है।"

"सम्मोहन ?" मुरली की भौंहे उठी।

"आप चौंके क्यों ?"

"नहीं तो !" और मुरली ने चाय की अन्तिम चुस्की खींच कर, खाली कप पत्नी की ओर बढ़ा दिया।

पत्नी भी चाय पी चुकी थी। "अब आप सो जाइए आँखें मूँद कर।" वह स्नेह से कुछ इस तरह बोली, गोया उसके पति को मालूम ही न हो कि सोने के लिए आँखें मूँदना ज़रूरी होता है।

मुरली ने आँखें मूँद ली।

खिड़क् !—दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़। अवश्य पत्नी जा चुकी थी मुरली ने आँखें खोल दीं। उसे चैन नहीं था। कमरे में उसने स्वयं को अकेला पाया। पत्नी अब तक किचन में पहुँच चुकी होगी···

मुरली की निगाहें कॉरनर-टेबल पर स्थिर होने से न रह सकीं। वह धातु-गेंद एक असहनीय-सी मर्दनी का आभास दे रही थी।

'अपना फर्ज पूरा करके, यह गेंद अब निष्क्रिय हो चुकी है।' मुरली स्वयं से बोला।

लेकिन कैसा फर्ज पूरा किया था गेंद ने? मुरली पर, उस फ़र्ज के पूरे होने का, कैसा प्रभाव पड़ने वाला था?

कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य पड़ेगा। वह भिनभिनाहट'''वह बेहोशी''' तीर की तरह सनसनाती वे डरावनी आवाज़ें'''

दो

अगले मंगलवार को मुरली ड्यूटी पर पहुँच गया। सूक्ष्म सींकों की उस धातु-गेंद को वह अपने ब्रीफ केस में रखकर साथ ले गया।

डाक्टर के सामने उस गेंद का भेद उसने इसलिए नहीं खोला था कि डाक्टर उसकी बात को हंसी में उड़ा देता—न उड़ाता, तो भी, उसके पल्ले कुछ पड़ने वाला नहीं था। कार्यालय में पहुँच कर मुरली अपने इन्जीनियर साथी ददन मेहता के साथ उस गेंद की चर्चा करना चाहता था। ददन मेहता केवल साथी ही नहीं, मुरली का गहरा दोस्त भी था। बचपन से ही वे साथ-साथ रहे थे। 'परल' के निर्माण में भी ददन और मुरली ने एक जैसा सहयोग दिया था।

'परल' का विकास किया गया था 'अन्तर्राष्ट्रीय संगणक सेवा' के तत्वावधान में। 'अससे' में उत्पादन इन्जीनियर की हैसियत से काम करते,मुरली को तीस बरस बीत चुके थे। इतना ही अर्सा ददन मेहता ने भी 'असंसे' में गुजार लिया था।

जब मुरली अपने कमरे की ओर बढ़ रहा था, अनेक सहयोगियों ने उसका अभिवादन किया और तबीयत का हाल पूछा। मुरली को यह देखकर अच्छा

लगा कि उसकी अनुपस्थिति सभी के द्वारा महसूस की गई थी। कमरे में प्रवेश करते समय उसे लगा कि जैसे वह सारी दुनिया का स्वामी है! शीघ्राति-शीघ्र विचार के लिए प्रस्तुत अनेक कागज उसकी मेज पर रखे थे। दरवाजे के पास की खूंटी पर अपना कोट टाँग कर वह कुर्सी में जा बैठा और उन जरूरी कागज़ों को सरसरी निगाह से देखने लगा। सहसा उसने कागज़ों को देखना बन्द करके इण्टरकाम-फोन उठा लिया और ददन मेहता का नम्बर डायल किया।

ददन ने फोन पर उसकी आवाज सुनते ही पूछा, "कैसी है तबीयत?"

'ठीक हूँ! बिल्कुल ठीक हूँ।' मुरली बोला।

"मैं दो बार गया था तुम्हारे घर।" ददन ने कहा, "लेकिन दोनों ही बार तुम बेहोश थे। तीसरी बार मैं न आ सका, मेरी पत्नी सहसा बहुत अस्वस्थ हो गई थी।"

'भाभी अब कैसी हैं?'

"लगभग ठीक।" ददन ने उत्तर दिया, "मैं आऊँ तुम्हारी तरफ?"

"तुम्हें बुलाने के लिए ही फोन किया है।" मुरली ने कहा, "मैं एक अजीब से दौर से गुजर रहा हूँ। पता नहीं, मेरी बातों को तुम गम्भीरता से लोगे भी या नहीं।. यों समझो कि ··लगभग किसी इन्द्रजाल जैसी स्थिति का सामना मैं कर रहा हूँ।"

"इन्द्रजाल?" ददन के स्वर में आश्चर्य था।

"तुम आ जाओ। बस।" और मुरली ने फोन रख दिया। अपनी आराम-देह कुर्सी की पीठ से टिक कर वह बैठ गया और सोचने लगा।

सोच!

अब यह नया अहसास शुरू हुआ था—कि जो कुछ भी वह सोचता है, उसका पता, अपने-आप, किसी और को चल जाता है!

सूक्ष्म सोवों की धातु-गेंद का फर्ज शायद यही था कि वह मुरली के बदन में कोई ऐसा परिवर्तन ला दे, जिससे मुरली जो कुछ भी सोचे, उसका गुप्त प्रसारण तुरन्त, उसी क्षण, हो जाया करे। धातु-गेंद इस फर्ज को पूरा करके अब निष्क्रिय हो चुकी थी···

कौन था वह व्यक्ति, जिसने धातु-गेंद को पहुँचाया था मुरली तक ? मुरली के प्राण-प्राण के विचारों से वह व्यक्ति क्यों अवगत होना चाहता था ? उसे क्या लाभ ?

ददन मेहता ने कमरे में प्रवेश करते, बड़े ही उत्साह से, मुरली का हाथ अपने हाथ में ले लिया और कहा, "तुम्हारे चेहरे पर अनोखी रौनक है। लगता ही नहीं कि तुमने गहरा सूर्य-दंश झेला है।"

"मैंने सूर्य-दंश नहीं झेला है, ददन !" मुरली ने गम्भीरता से उत्तर दिया, "मेरे साथ कुछ रहस्यमय घट रहा है—कुछ ऐसा कि जिसे मैं ठीक से समझ भी नहीं पा रहा। जितना समझ पाया हूँ, उस पर यकीन करना मुश्किल है।"

और मुरली ने अपना ब्रीफकेस खोल कर उसी धातु-गेंद को ददन के सामने रख दिया। "बता सकते हो, यह क्या है ?" मुरली ने ददन पर प्रश्न-वाचक निगाह फेंकते हुए कहा। ददन ने गेंद को उठा कर, घुमा-फिरा कर देखा। "क्या है यह ?" उसने मुरली से ही पूछा। मुरली हँसा, "काश ! मैं जानता होता ! मेरी परेशानियों की शुरुआत इसी गेंद से होती है।"

"कैसे ?"

और मुरली ने, दस्ताने-उतरे हाथों में गेंद के आने से जो-जो हुआ था, पूरे विस्तार के साथ बयान कर दिया। "देखने में प्लेटिनम की बनी होते हुए भी, मैं नहीं सोचता कि यह गेंद प्लेटिनम की है। बहरहाल···किस धातु से इसका निर्माण हुआ है, इससे भी ज्यादा महत्व की बात यह है कि इसकी कार्य-पद्धति क्या है। यह केवल धातु की एक डिजाइन-सी मालूम पड़ती है। इसके भीतर कोई ट्रांजिस्टर नहीं है, ईंधन का कोई कक्ष भी मैं इसके भीतर नहीं देख पाया कि जिसके ज़ोर पर यह गेंद अपना कार्य करती हो। अभी यह निष्क्रिय हो चुकी है, किन्तु इसकी सक्रियता विचित्र थी। बेहोश होते-होते मैंने बहुत चाहा था कि इसे छोड़ दूँ, लेकिन मेरी मुट्ठी कसती ही चली गई थी इस पर ! इसकी सक्रियता ने जैसे मुझे हिप्नोटाइज कर दिया था।"

"हूँ···" ददन ने सिर खुजलाया, "उससे भी बड़ा आश्चर्य यह है कि तुम्हारी जेब में यह पहुँची कैसे।"

"चाहे जैसे पहुँची हो, लेकिन···यह गेंद मुझे घर के भेदिये का रूप दे चुकी है।"

"घर का भेदिया ?"

"हाँ, ददन ! मुझे निरन्तर अनुभव हो रहा है कि जो—कुछ भी मैं सोचता हूँ, उसका पता, उसी क्षण, किसी अन्य को चल जाता है।"

"किसको ?"

"पता नहीं, किसको ! कोई आश्चर्य न होगा, यदि तुम्हारे साथ हो रही अभी की सारी बातचीत, शब्दशः, किसी अन्य के द्वारा सुनी जा रही हो··· इस तरह तो मैं पागल हो जाऊँगा, ददन !"

"हो सकता है, मुरली, कि यह तुम्हारा केवल भ्रम हो।"

"नहीं, यह भ्रम नहीं है। यह गेंद मेरी जेब में आई, इससे पहले ही मुझे पता चल गया था कि कोई व्यक्ति या शक्ति है, जो चुपके से मेरी जेब में कुछ सरका देना चाहती है। उस अहसास को मैं भ्रम समझ कर ही नकारना चाहा था—जबकि वह एक ठोस सच्चाई थी। मुझे विश्वास है कि यह जो दूसरा अहसास अब शुरू हुआ है, वह भी भ्रम नहीं, बल्कि ठोस सच्चाई है। अवश्य मेरे एक-एक विचार का पता किसी अन्य को चलता जा रहा है।"

"याने . ...'उससे' की जितनी भी गुप्त बातें होंगी, सब तुम्हारे विचारों के माध्यम से किसी अन्य तक पहुँचती जाएँगी ?" ददन ने आँखें झपकायीं।

"हाँ ! इसी लिये तो मैंने कहा कि इस गेंद ने मुझे घर के भेदिये का रूप दे दिया है।"

"लेकिन मुरली, यह असम्भव है।"

"'असम्भव' शब्द को मानव अपने शब्द-कोष में से सदियों पहले निकाल चुका है।"

"किन्तु, मुरली, तुम जो कह रहे हो, वह तो···"

"ददन, प्लीज, मैं तुम्हारी मदद पाना चाहता हूं। मैंने तुम्हें इसलिए नहीं बुलाया है कि मेरा कौन-सा अहसास भ्रम है और कौन-सा सच्चाई, इस पर बहस करूँ। देखो, मेरे दाहिने बाजू के इन सफेद दागों को। ये मुझे लगातार सावधान कर रहे हैं कि सच्चाइयों को मैं केवल भ्रम मान कर व्यर्थ

...ी न नकार दूं । कोई बहुत भयंकर खतरा मुझ पर कच्चे धागे से लटक रहा है...''

"मैं पूरी मदद करूंगा तुम्हारी, लेकिन कोई रूप भी तो हो सामने— कि खतरा कैसा है और मदद किस तरह की जाए।" ददन का उत्तर था।

"खतरे का रूप तो मैं सामने रख ही चुका—कि कोई व्यक्ति या शक्ति मेरे विचारों पर जासूसी कर रही है''...

"व्यक्ति या शक्ति ?" ददन की भौंहें सिकुड़ीं, "क्या तुम्हारी जेब में मेंद पहुंचाने का काम किसी शक्ति का हो सकता है ? शक्ति—कि जिसे हम अपनी पुस्तकों में पहचानते हैं, कि जिसे हम नाप भी चुके हों, कि जिसे हम चिनगारियों या कौंध के रूप में देख भी सकते हैं ?"

"पता नहीं, ददन !" मुरली ने गहरी सांस ली, "जिस तरह हम मनुष्य को, या किसी भी अन्य प्राणी को देख सकते हैं, उसी तरह विभिन्न शक्तियां भी हमें नजर आती ही हैं। पानी में जब ताप की शक्ति बढ़ती है, तो हमें उबाल दिखाई देता है। बादलों में जब बिजली की शक्ति बढ़ती है, तो हमें चमक दिखाई देती है·· मैं नहीं जानता कि शक्तियां उसी तरह सोच-विचार कर सकती हैं या नहीं कि जिस तरह मनुष्य, लेकिन···लेकिन क्या आश्चर्य यदि···"

"ओह! ओह !" ददन बुदबुदाया।

कई पलों तक सन्नाटा खिंचा रहा कमरे में।

उस सन्नाटे को मुरली ने भंग किया, "जिस तरह मनुष्य का अपना साम्राज्य है, क्या आश्चर्य, यदि विभिन्न शक्तियों के भी विभिन्न साम्राज्य हों···क्या मनुष्य एवं शक्तियों के साम्राज्य में टक्कर होने वाली है ?"

"तुम्हारी बातें सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए हैं।" ददन ने कहा, "हमें तुरन्त वैज्ञानिकों की आपत्कालीन बैठक बुलाकर यह प्रश्न उठाना चाहिए।"

"नहीं, ददन ! अभी नहीं।" मुरली ने कहा, "किसी भी प्रश्न को उठाने से पहले उसकी रूपरेखा को स्वयं अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मैं नहीं समझ पाया हूं··· सोचता कि जो स्थितियां मैं झेल रहा हूं, उन्हें मैं पूरी तरह जो कुछ भी मैंने तुम्हारे सामने रखा है, वह सब केवल अहसास-ही-अहसास है। क्यों न हम दोनों मिलकर, पहले इस अहसास की छानबीन करें ? ज...

तक इस विचित्रता को हम स्वयं ठीक से नहीं समझेंगे, तब तक दूसरों को हम समझा किस तरह पायेंगे ? वैज्ञानिकों की बैठक बुलाने पर हमारा मज़ाक ही उड़ेगा।"

"बात तो तुम्हारी सच है—" दद्दन धीमे स्वर में बोला, "लेकिन इन्द्रजाल जैसी जिन स्थितियों को तुम झेल रहे हो, जब तक स्वयं मैं भी उन स्थितियों में न फंसूं, तब तक सारी बात मेरे पल्ले नहीं पड़ेगी···और जब तक सारी बात पल्ले नहीं पड़ेगी, मैं तुम्हारी क्या मदद कर पाऊंगा ?"

"फिलहाल तो यही काफ़ी है कि तुमने मेरी बातों को गप नहीं माना।" मुरली ने हंस कर कहा, "रही बात इसकी कि मेरे जैसे ही अहसास तुम्हें भी अपने शिकंजे में कसें—तो···मैं नहीं जानता कि मुझे कैसी कामना करनी चाहिए। ये अहसास इतने भयंकर और विचित्र हैं कि मैं अपने दोस्त को इस शिकंजे में फंसते देखना नहीं चाहूंगा। दूसरी ओर, तुम्हारी भी बात सच है कि जब तक तुम स्वयं शिकंजे में न फंसोगे, मेरी मदद करना—या, कहो कि, अहसास की छानबीन करना—तुम्हारे लिए सम्भव न होगा···"

"एक और भी बात है, जो सुनिश्चित है, मुरली !"

"क्या ?"

"यह कि जिस भी व्यक्ति—या, शक्ति—द्वारा यह धातु-गेंद तुम्हारी जेब तक पहुंचाई गई है, उसने कभी नहीं चाहा होगा कि उसके इरादों का पूर्वाभास तुम्हें मिल जाए।"

"किन्तु पूर्वाभास मुझे मिला था"। मुरली ने कहा, "दो हफ़्ते पहले ही मैं जान गया था कि कोई चीज़ मेरी जेब में सरकाई जाने वाली है।"

"यही तो !" दद्दन ने अधैर्य से मेज़ का कगार पकड़ लेते हुए कहा, "जानते हो इसका अर्थ क्या है ?"

"तुम क्या सोचते हो ?"

"कि तुम्हारी छठवीं संवेदना जाग चुकी है।"

"छठवीं संवेदना ?"

"कुछ पशु-पक्षियों में छठवीं संवेदना होती है—सिक्स्थ सेन्स ! आदि काल के मनुष्य में भी यह संवेदना थी, जिसके ज़ोर पर वह किसी भी ख़तरे

थी, अपना-अपना होने से पहले ही, और मेरा था···किन्तु केवल मनुष्य ने अप्राकृतिक ढंग से रहना शुरू किया और प्रकृति ने उसकी संवेदना का वह वरदान मनुष्य से छीन लिया जो पास थे, मनुष्येतर अधिकांश प्राणियों को मिला हुआ है···"

"तुम्हारा मतलब है···छठवीं संवेदना का वरदान मैंने पुन पा लिया ?"

"हाँ, किन्तु हमेशा के लिए नहीं। मगर खतरे के क्षणों में मनुष्य की यह संवेदना कभी-कभी ही जागती है। इसे वरदान न समझो। बल्कि इस संवेदना का जागना ही इस बात का सबूत है कि जो खतरा आने वाला है, वह कितना जबरदस्त है।"

मुरली ने खूब [illegible]। कैसी लाचारी थी कि खतरे के विवेचन की ये सारी बातें भी, ऐन इसी वक्त, किसी यन्त्र के द्वारा, चुपके-चुपके सुन ली जा रही हैं···फिर, जब खतरे के मुकाबले की रूपरेखा बनेगी, तब उसे भी 'वह कोई अन्य' [illegible] जान लेगा। फिर रूपरेखा के बनने का अर्थ ही क्या रहेगा ? मुरली और ददन एक-दूसरे को आँखों से देखते रह गए।

"क्या हम किसी तीसरे व्यक्ति को भी अपने साथ शामिल करें ?" ददन ने पूछा।

"किसे ?"

"सोच कर बताऊँगा।"

"लेकिन ददन, दो से तीन भले वाली कहावत हमेशा चरितार्थ नहीं हुआ करती। ज्यादा हाथों से खिचड़ी बिगड़ती भी है।"

"सोचूँगा। सोचने दो।" बुदबुदा कर ददन उठ खड़ा हुआ, "तब तक यह सारी बातचीत हम दोनों के बीच ही रहेगी।"

मुरली हँसा, "यह सारी बातचीत मेरे विचारों में अंकित हुई है और मेरा एक-एक विचार 'किसी अन्य' तक पहुँचता जा रहा है। आइन्दा, कोई बातचीत ऐसी नहीं हो सकेगी' जो केवल हम दोनों के बीच रहे।"

"फिलहाल इस वहमको नकारो।"

"कि मेरा हर विचार गुप्त रूप से प्रसारित हो रहा है ?"

"हाँ।"

"कैसे नकारूँ ? नकारना असम्भव है [illegible] भी नहीं।"

सुनकर ददन का चेहरा पथरीला हो आया, "मुरली ! अर्थ हो क्या न हो, लेकिन जब तक इस अहसास को झूठा मान कर नहीं चलोगे, हम कुछ नहीं कर सकेंगे।"

"ओके, डियर !" और मुरली के होंठों पर एक रूखी मुस्कान सिहर गई।

ददन बाहर निकल गया।

पाँच मिनट भी न बीते होंगे कि इण्टरकाम-फोन में किरकिराहट हुई और ... ने रिसीवर उठाया, "हैलो !"

फोन ददन ने किया था। उसकी आवाज़ बुरी तरह काँप रही थी, ...री ! वह अहसास अभी मुझे भी हुआ !"

"तुम्हें भी ?" भय और आश्चर्य की फुरफुरी मुरली की हड्डियों तक ...गई।

"हाँ, मुरली ! जब मैं 'परल' की एक वीथी से गुज़र रहा था, सहसा ... कि मेरे पीछे-पीछे कोई आ रहा है। पलट कर देखा तो कोई नहीं था।"

"अब ? अब क्या होगा ?"

"कौन जानता है !" ददन का स्वर उसी तरह काँप रहा था, "तुम मुझे ...ई क्यों नहीं देते ? वह शिकंजा मुझ पर भी कसा जा रहा है। मैं तुम्हारा ...ी हूँ।"

"अपनी आवाज़ की कपकंपी पर काबू पा, प्रिय साथी !" मुरली ने ...ता की शैली में कहा, फिर हँस पड़ने की अर्द्ध-सफल चेष्टा की।

"कंपकंपी मेरे भय की द्योतक नहीं है। मैं उत्तेजित हूँ। बस।"

"मैंने कब कहा कि तुम भयभीत हो ?"

"मुरली ! मेरी तो यही राय है कि हम तीसरे व्यक्ति को शामिल करें।"

"ताकि शिकंजा उस तीसरे पर भी कसा जाए ?" मुरली ने व्यंग्य पूछा।

"क्या गारण्टी है कि शिकंजा उस पर भी कसा जाएगा ?"

अन्य सभी बड़े यांत्रिक संस्थानों में—ऐसे भरती के कर्मचारी केवल अपनी हाजिरी लगवाने आते थे। काम के नाम पर उनसे किसी भी तरह की आशा नहीं रखी जा सकती थी। न वे मुरली जैसे दक्ष इंजीनियरों का कोई सम्मान ही करते थे। जब वे मुरली के अभिवादन में हाथ उठाते तो यही लगता कि जैसे वे कोई सरकारी फाइल निबटा रहे हों। मुरली को उनसे नफरत थी, लेकिन वह यह भी जानता था कि उनके खिलाफ़ मुँह खोलने का भी कोई अर्थ नहीं है।

मुरली का अनुमान सही निकला—'यरल' की दीर्घा पार करते समय, किसी व्यक्ति या शक्ति द्वारा पीछा हो रहा होने का कोई आभास उसे न मिला। ददन मेहता के कमरे में घुस कर वह कुर्सी में डट गया। फिर कुर्सी में निढाल हो जाते हुए उसने अपना जिस्म इस तरह फैला दिया, जैसे दुनिया की सारी चिन्ताओं से मुक्त हो गया हो वह! किन्तु वह अच्छी तरह जानता था कि उसकी वह मुद्रा कितनी जाली थी।

"ददन!" बातों के दौरान उसने कहा, "कोई निर्णय हड़बड़ी में न लो। मेरी राय के अनुसार, तीसरे व्यक्ति को शामिल करके हम एक भूल ही करेंगे। ऐसे नाजुक मामलों में, सभी व्यक्तियों की राय हमेशा अलग-अलग होती है। एकमत न हो पाने के कारण, व्यक्ति जितने ज्यादा होते हैं, आपस में वे उतने ही ज्यादा उलझते जाते हैं। 'यरल' के माध्यम से जो भी व्यक्ति—या शक्ति—हमें घेर रही है, उसका मुकाबला यदि मानवीय क्षमताओं द्वारा किया जा सकता है, तो मैदान सर करने के लिए हम दोनों काफी हैं। और यदि मुकाबला मानव द्वारा किया ही नहीं जा सकता, तो—तीन या चार की क्या बात, सैकड़ों या हजारों इंजीनियरों, वैज्ञानिकों को साथ मिला लें, तो भी—हार हमारी ही होगी। फ़िलहाल, तीसरे शख़्स की कोई जरूरत मैं इसी-लिए नहीं देख रहा।"

"चलो, ठीक है, जब तक हम दोनों दुरुस्त हैं, हम ही डटे रहेंगे।" ददन मुस्कराया।

"न केवल दफ़्तर में, बल्कि घर में भी, हम निरन्तर फोन पर सम्पर्क बनाए रहें, यह अत्यंत आवश्यक है।"

"हाँ।" ददन ने सिर हिलाया।

"उस विचित्र अहसास की कमी ... [illegible]
कहा, "सावधान रहना—धातु-गेंद अब तुम्हारी [illegible] जेब में आकर रहेगी। [illegible] कभी-न-कभी उसे अवश्य आना है। तुम उसे रोक नहीं सकोगे—"

"रोकने की जरूरत भी क्या है।" ददन हंसा, "मैं तो चाहता हूँ कि वह आए।"

"लेकिन उसे सीधा स्पर्श भूल कर भी न करना। दस्ताने पहने हाथों से उसे उठाना खतरनाक नहीं है।" मुरली का स्वर था, "सीधा स्पर्श करने पर तुम अजीब-सी आवाजें सुनोगे और पलक झपकते बेहोश हो जाओगे, जब होश में आओगे, तब तक, तुम्हारे विचारों का गुप्त प्रसारण होने लग चुका होगा।"

"मैं जानता हूँ। मैं क्यों करूँगा सीधा स्पर्श?" ददन मेहता ने कहा, "तुम्हारी गेंद तो निष्क्रिय हो चुकी। मेरा ख्याल है कि यदि हम गेंद को सक्रिय स्थिति में प्राप्त कर लें, तो उसकी कार्य-प्रणाली को समझना काफी आसान रहेगा।"

"गेंद ज्यों ही जेब में आए, दस्ताने पहन कर उसे निकाल लेना और उसी क्षण मुझे फोन से सूचना देना।"

"ओके।"

"फिर से सावधान कर दूँ—सीधा स्पर्श भूलकर भी न करना।"

"लेकिन मुरली!" ददन की आँखें सिकुड़ीं, "मुमकिन है, गेंद मेरी जेब में डाली ही न जाए। वह मुझ पर फेंकी भी तो जा सकती है। क्या आश्चर्य, यदि वह इस तरह फेंकी जाए कि मैं सीधे स्पर्श से बच ही न सकूँ। चेहरा, गर्दन, कनपटी, हाथ आदि अंग हमेशा वस्त्रों से बाहर रहते हैं। गेंद किसी भी अंग पर आकर चिपक सकती है।"

"चुप रहो, प्लीज, ददन, ये सब बातें मत कहो।" मुरली अकस्मात् चिल्ला पड़ा, "मत भूलो कि ये सारे शब्द मेरे विचारों में अंकित हो रहे हैं। यह सारी बात, अपने-आप, किसी अन्य व्यक्ति या शक्ति तक पहुँचती जा रही है। मैं इसे रोक नहीं सकता। गेंद को सीधे स्पर्श का निशाना लगाकर फेंका जाए, यह आइडिया स्वयं तुम्हीं उस व्यक्ति या शक्ति तक पहुँचा रहे हो! मैं प्रसारण

र रहा हूँ—भागता जा रहा हूँ। कितने खौफनाक जाल में फंस गए हैं.
न।"

दोनों हदन की भी फँस गई थीं।

तीन

अपने कमरे में लौट कर मुरली ने कुछेक आवश्यक कार्यों में डूब जाने की चेष्टा की। रात तक वह लगभग डूबा रहा। तब उसने अकेले में लिया। पुनः उसने तरह-तरह के कागजात मेज पर फैला लिए और अध्ययन करने लगा। अधिकांश कागज केवल सूचनापरक थे, उन पर किसी भी तरह का आदेश मुरली को नहीं देना था।

"नमस्कार।" एक महीन आवाज सुनाई दी और मुरली चौंक गया। निगाह उठाते ही उसे सुनहरे बालों का विग दिखाई दिया। विग के आधार पर उसने पहचान लिया कि उसकी प्राइवेट सेक्रेटरी सामने खड़ी है। सुन्दर, मीठी, मधुर। पता ही नहीं चला था मुरली को कि कब वह भीतर आ गई थी। मुरली मुस्करा दिया। तब तक केवल विग ही नहीं, बल्कि सेक्रेटरी की भौंहें, आँखें, नाक, मुँह, ठुड्डी, दोनों गाल और गर्दन भी मुरली की निगाह में आ चुकी थी। अपने तरह का यह पहला ही अनुभव था मुरली के लिए, कि जब उसने अपनी सेक्रेटरी के चेहरे को यों अलग-अलग टुकड़ों में पहचाना या महसूस किया।

"बैठिए, बैठिए न!" मुरली ने अपनी मुस्कान को और अधिक गहरा बना लेते हुए कहा।

मीनाक्षी बैठ गई। उसके हाथ में एक फाइल थी, जिसे उसने मेज पर रखते हुए कहा, "कार्यालय में वापसी के लिए मेरी बधाइयाँ!"

"बधाइयाँ! ओह!" मुरली बुदबुदाया। काश, मीनाक्षी जानती होती स्थिति बधाइयाँ देने जैसी नहीं है। मीनाक्षी को सब कुछ बता देने की

दम्य इच्छा मुरली के मन में ऐंठने-सी लगी। मुश्किल से रोका उसने स्वयं को। वह अदृश्य शक्ति मीनाक्षी पर भी शिकंजा कसे—मुरली यह कैसे चाह सकता था।

"किस सोच में डूब गए आप ?" मीनाक्षी हँसी। वह मेज पर रखी फ़ाइल को तब तक खोल चुकी थी।

"सोच ? नहीं तो !" मुरली पुन. बुदबुदाया, "शायद आप मेरे लिए कुछ विशेष सूचनाएँ लाई हैं..."

"सूचनाएँ तो हैं, किन्तु 'विशेष' श्रेणी की नहीं। बल्कि, यों कहिए कि सभी सूचनाएँ 'विशेष' ही होती हैं, फिर उन्हें अलग से श्रेणी क्यों दी जाए ?" मीनाक्षी ने कहा, "कामगार यूनियन ने आपका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया है। यूनियन का लिखित जवाब आ गया है।" और उसने फाइल में से एक खर्रा निकाल कर मुरली के सामने रख दिया।

मुरली ने खर्रा उठा कर तेज़ी से पढ़ डाला।

'यरल' सगणक में जितने मनुष्य काम करते थे, उनमें सबसे आलसी था हरीश। किसी भी एक स्थान पर यदि आलसी आदमी पहुँच जाए, तो उसके कारण समूचे तन्त्र की कार्य-क्षमता नीचे चली जाती है—और यह हरीश ही था कि क्यों 'यरल' सगणक घाटे में संचालित हो रहा था। यदि हरीश चुस्ती बरते, या उसकी जगह पर किसी और को बिठाया जाए, तो 'यरल' का संचालन 'अन्तर्राष्ट्रीय सगणक सेवा' के लिए एक लाभदायक बात हो सकती थी। मुरली ने कामगार यूनियन के सामने प्रस्ताव रखा था कि हरीश को नौकरी से तो न निकाला जाए (जैसे की सरकारी नौकरों को यों आसानी से निकाला जा सकता हो !), किन्तु उसका स्थान बदल दिया जाए। यूनियन के सचिव ने, अब, उत्तर दे दिया था कि हरीश से वार्तालाप किया गया है, हरीश अपनी जगह से हटने को राजी नहीं है—और, जैसे कि संवैधानिक नियम हैं, हरीश की भावनाओं का सम्मान हमें करना ही होगा। 'यरल' अन्ततः एक यंत्र है और यंत्र की आवश्यकताओं के सामने मनुष्य की भावनाएँ, क़ानूनन, हमेशा ऊँचा स्थान रखती हैं।

[illegible] के सामने लगे हैं बटनों [illegible] विवरण का [illegible] को।
मुरली ने चाय की चुस्की लेते हुए कहा, "कोई और लीजिए।"
"[illegible] —यही है 'यरल' [illegible] की कोई-न-कोई शिकायत की गई है। मीनाक्षी [illegible] लिखते क्यों।
"पहले दीजिए। शिकायतों को मैं बाद में देख लूँगा।" मुरली ने कहा, "ये [illegible] शिकायत है। इंजीनियरों की [illegible] करने के लिए [illegible] [illegible] कि गड़बड़ी इंजीन में नहीं, बल्कि [illegible] 'यरल' में है। ठीक विपरीत, 'यरल' की कामनाएँ तो [illegible] अधिक हैं [illegible] उन कामनाओं को।"
"ओह!" मीनाक्षी ने केवल दो शब्दों के इस शब्द को कुछ ऐसे कहने से कहा कि मुरली चकित होकर देखने लगा उसकी ओर। मीनाक्षी चुप रह गई थी। उसकी निगाहें झुक चुकी थीं।
"आप कुछ कह रही थीं?" मुरली ने टोका।
मीनाक्षी ने सिर उठाया, "जी, हाँ... मैं... मैं, दरअसल, आपसे सहमत नहीं हूँ।"
"किस बाबत?"
"इतना तो मैं भी मानती हूँ कि 'यरल' की कामनाएँ बहुत अधिक हैं, लेकिन मैं इसे स्वीकार नहीं करूँगी कि 'यरल' की शिकायतें मनगढ़न्त हैं।" मीनाक्षी ने उत्तर दिया, "मैंने कइयों से पूछताछ की है। उनमें से अधिकांश पर मैं पूरा विश्वास करती हूँ—वे मेरे सामने झूठ नहीं बोल सकते। सबकी एक ही राय है।"
"क्या?"
"यही कि 'यरल' की अविश्वसनीय कामनाओं के कारण मानव उसका संचालन नहीं कर सकते। 'यरल' आगे निकल जाना चाहता है। मानव पिछड़ जाते हैं।"
"यह कमजोरी तो मानवों की है। 'यरल' की कैसे?"
"मैं जानती हूँ, बॉस, कि आप आगे क्या कहेंगे। आप यही कहेंगे न कि मानव संचालन नहीं कर सकते, फिर उन्हें नियुक्त ही क्यों किया जाए?"

क्यों न सारे मानवों को निकाल कर, 'यरल' को पूरी तरह आटोमेटिक बना दिया जाए ?"

"हाँ, मैं यही कहने वाला था ।"

"माफ कीजिएगा, लेकिन क्या आप गलती पर नहीं हैं ?"

"कैसे ?"

"संगणक मानव के लिए हैं या मानव संगणकों के लिये ?"

"तकनीकी समस्याओं को दार्शनिक ढंग से हल नहीं करना चाहिए । इससे वे और भी उलझ जाती हैं ।" मुरली बोला, " 'यरल' एक उत्पादन-इकाई है । विश्व की अनेक संस्थाएँ अपने नाजुक हिसाब-किताब 'यरल' के माध्यम से करवाती हैं । यदि दिन भर में हम केवल एक या दो संस्थाओं का हिसाब तैयार करें तो निश्चित रूप से घाटे में चलेंगे । रोज हमें कम-से-कम पाँच संस्थाओं के हिसाब निश्चित रूप से तैयार करने चाहियें । यह तभी सम्भव है जब मानव की कमजोरियाँ 'यरल' के आड़े न आएँ । मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जिस दिन 'यरल' को पूरी तरह आटोमेटिक कर दिया जाएगा, रोज पाँच से भी ज्यादा संस्थाओं के हिसाब तैयार होने लगेंगे । घाटे का सवाल ही नहीं । किन्तु हरीश जैसे आलसी अजगर महत्त्व की जगहों पर बैठ जाते हैं और..."

"आपकी बात अपनी जगह सही हो सकती है ओंग !" मीनाक्षी का स्वर, पहले की तुलना में, अब काफी आत्म-विश्वासी हो चला था, "किन्तु अनेक कारणों से, अनेक सरकारी संस्थान घाटे में ही चलाए जाते हैं । सरकार के जो अन्य संस्थान लाभ में चलते हैं, वे इस घाटे की कसर पूरी कर देते हैं । सारे-के-सारे संस्थानों को लाभ में चलाने के सपने हम क्यों देखें ?"

"मीनाक्षी जी, मैं यह कैसे सह सकता हूँ कि दूसरे संस्थानों के लाभ का भक्षण हम करते रहें ? यह मेरी इज्जत का सवाल है ।"

"मेरी और आपकी रायें भिन्न हो सकती हैं । मैं आपसे बहस नहीं करूँगी ।"

"मैंने कब कहा कि आप मुझसे बहस कर रही हैं ?" मुरली बहुत आत्मीयता से मुस्कराया, "आपको मैंने हमेशा एक सुलझी हुई महिला के रूप में देखा है ।"

शाम तक दायीं भुजा की जाँच पूरी हो जाएगी। फिर शेष रह जायेंगी दो और भुजायें। यदि इन दो में भी कोई गड़बड़ी न निकली, तो, चारों भुजाओं की पुन: सूक्ष्म जाँच की जायेगी। सूक्ष्म जाँच के बाद भी यदि कोई गड़बड़ी न निकली—फिर ? तब, शायद यह मानने के लिए मजबूर होना पड़े कि साज़िश में 'परल' का कोई हाथ नहीं है। इसका अर्थ यह भी होगा कि हरीश तक को निर्दोष मान लिया जाय।

मुरली बहुत पूर्वाग्रही था हरीश के प्रति। मुरली के विचारों का गुप्त प्रसारण जो व्यक्ति निरन्तर ग्रहण कर रहा है, यदि वह हरीश ही है, तो··· हरीश भी मुरली के प्रति उदार रहा होगा अभी ! मुरली ने मन-ही-मन हरीश को जो गालियाँ दी हैं, सब उसे ज्ञात हो गई होंगी···

यदि हरीश सचमुच निर्दोष हो, तो भी, मुरली उसे दोषी साबित कर देना चाहता था। हरीश की सूरत से ही नफरत हो गई थी उसे।

हरीश के ही कारण 'परल' घाटा दे रहा था। इलेक्ट्रानिक मल्टीप्लायर हरीश की नब्ज़ पर फिट करने की बाबत, देखें, यूनियन का सचिव अब क्या कहता है।

लंच होते ही ददन और मुरली, 'परल' की वीथिओं को पार करते हुए, सचिव के कमरे की दिशा में जाने लगे। अन्तिम वीथी पार होने ही वाली थी कि मुरली ने देखा, सामने से हरीश आ रहा था।

मुरली और ददन पर नज़र पड़ते ही हरीश का चेहरा तमतमा आया। जूतों को खटाक-खटाक बजाता हुआ वह आगे बढ़ता रहा। जब तक वह बिल्कुल नज़दीक न आ गया, उसने अभिवादन का हाथ न उठाया—और जब उठाया तब भी, निहायत ठण्डी औपचारिकता से। उतने ही ठण्डेपन के साथ मुरली और ददन ने भी हाथ उठा दिए। गहरी खामोशी से हरीश उनकी बग़ल से निकल गया।

मुरली के तन-मन पर सन्नाटा-सा फैल गया था। वीथी का नुक्कड़ पार करते समय अचानक वह ठिठक गया। ददन ने रुक कर पीछे देखा, "क्या बात है ?"

२

"एक आइडिया सूझ रहा है मुझे।" मुरली ने कहा। हरीश ने उसके मानस पर जो सन्नाटा अंकित किया था, मानों उसे नकार देने के लिए उसका मस्तिष्क सहसा अत्यन्त सक्रिय हो उठा था। विचारों के गुप्त प्रसारण को क्षण-क्षण ग्रहण करने वाले ने इसी वक्त पहचान लिया होगा इस सक्रियता को··· लेकिन बला से ! कितनी कायरता है उस व्यक्ति या शक्ति में, कि जो सामने आने को तैयार ही नहीं। सारा करिश्मा परदे के पीछे से ही दिखाने की नीति है उसकी। अभी-अभी मुझे आइडिया को मुरली के दिमाग से गायब कर देने की क्षमता उस व्यक्ति या शक्ति में है क्या ? नहीं तो ! फिर क्या फर्क पड़ता है, यदि गुप्त प्रसारण उस तक पहुँच ही रहा हो ?

"आइडिया ?"

"हाँ, ददन ! यदि मान कर चलें कि साजिश 'यरल' कर रहा है, तो, अपने-आप सिद्ध हो जाता है कि 'यरल' में एक विवेक पैदा हो चुका है, जिस की जानकारी स्वयं हम ही को नहीं। मानव के विवेक का केन्द्र कहाँ है ? मस्तिष्क में ही न ? उसी तरह, 'यरल' के विवेक का केन्द्र हो सकता है ?"

"उसके स्मृति-कोष्ठ में ?" ददन ने आँखें सिकोड़ीं।

"स्मृति-कोष्ठ में तो केवल तकनीकी जानकारियों का भण्डार है। विवेक और तकनीकी जानकारी में बहुत अन्तर है।" मुरली का उत्तर था।

"तुम्हारा मतलब है कि···'यरल' ने विवेक का कोई गुप्त खण्ड विकसित कर लिया है ? चोरी से ?"

"अभी इस प्रश्न का उत्तर मैं न 'हाँ' में देना चाहता हूँ, न 'ना' में। सब से पहले हमें स्मृति-कोष्ठ की कसौटी करनी चाहिए।" मुरली ने कहा।

मुरली और ददन उसी क्षण लौट पड़े। वे इतनी जल्दी-जल्दी चल रहे थे कि उनकी साँस भर आई। बायीं भुजा की दीर्घा में उन्होंने प्रवेश किया। वे उस स्विच-बोर्ड के पास पहुँच गये, जहाँ से 'यरल' का सम्बन्ध स्मृति-कोष्ठ से काटा जा सकता था।

सम्बन्ध काटने से पहले मुरली ने छिद्रों वाले एक कार्ड पर, विशेष व्यवस्थानुसार, माइक्रो-शब्द्म के रूप में गणि' ी एक पहेली अंकित की। बटन दबाकर उसने वह कार्ड 'उत्तर विभाग' . पहुँचा दिया। चौथाई सेकण्ड

भी न बीता होगा कि पहेली का सही-सही हल, एक अन्य कार्ड पर छाप कर 'उत्तर विभाग' की टोकरी मे आ गिरा । उत्तर वाला वह कार्ड ददन ने उठा लिया ।

तब तक मुरली ने कई स्विच ऑफ करके 'यरल' का सम्बन्ध स्मृति-कोष्ठ से काट दिया था । गणित की उसी पहेली को फिर से एक कार्ड पर, माइक्रो-डाट्स के रूप मे अंकित करके, मुरली ने बटन दबाया । कार्ड 'उत्तर विभाग' मे पहुँच गया । चौथाई सेकन्ड भी न बीता होगा कि एक अन्य कार्ड टोकरी में आ गिरा । ददन ने जब उस कार्ड को टोकरी मे से निकाला तो उसके हाथ काँप रहे थे ।

दोनो इन्जीनियरो ने साफ-साफ देखा कि वह कार्ड कोरा नही था । उस पर पहेली का हल छपा हुआ था ! एकदम सही हल !

जबकि, स्मृति-कोष्ठ से सम्बन्ध कट जाने के बाद, 'यरल' को उस टोकरी में कोरा कार्ड ही गिराना चाहिए था ।

फटी हुई आँखो से दोनो इन्जीनियर एक-दूसरे को देखते रह गए ।

"नही, नही, यह असम्भव है···" ददन लरजती आवाज मे बुदबुदाया ।

"क्या पुन याद दिलाऊँ कि 'असम्भव' शब्द सदियों पहले मर चुका है?" मुरली ने कहा, "अब 'यरल' के पास अपना ही एक विवेक है—ऐसा विवेक, जो उसे मनुष्य से नहीं मिला । यह विवेक 'यरल' का अपना उत्पादन है । 'यरल' 'स्मृति-कोष्ठ' की सहायता के बिना भी अपना काम चला सकता है···काश, ईश्वर जिन्दा होता, ताकि उसे याद करके हम अपने भय को नकार सकते !"

ददन की आँखें चमक उठीं, "मुरली ! अगर पता चल जाए कि 'यरल' का विवेक किस खण्ड मे है, तो···हम उसे चुटकियों में बर्बाद कर देंगे । 'यरल' पुनः हमारा गुलाम बन जायेगा ।"

"नही !" मुरली ने होंठ दबाए, "यरल' फिर से नया विवेक खण्ड विकसित कर लेगा । जितनी बार हम खण्ड नष्ट करेंगे, उतनी ही बार नए-नए खण्ड तैयार होते जायेंगे ।"

"क्यों न हम 'यरल' को ही नष्ट कर दें?"

मुरली हँसा, "वह एक संगीन जुर्म होगा। न केवल हमें, हमारे परिवार-
वालों को भी मौत के घाट उतार दिया जायेगा। मनुष्य को मारने की सजा
मौत नहीं है, लेकिन संगणक को मारने की सजा सपरिवार मौत है! कैसा
कानून! कैसी विडम्बना!"

"मैं भी परिचित हूँ इस विडम्बना से।" ददन ने जब यह कहा, वह कुछ
चिढ़-सा गया था, "'यरल' को हम चुरा के ले, इतने भेद-भरे तरीके से नष्ट
करेंगे कि किसी को सुराग ही न मिल पाए। हम 'यरल' के निर्माताओं में से
हैं। हम पर तो वैसे ही कोई शक नहीं जाएगा।"

"ददन!" मुरली ने उत्तर दिया, "सबसे पहले तो यह पता लगाओ कि
क्या विवेक-खण्ड है वहां। फिर, सैनिक अधिकारियों और वैज्ञानिकों को बुला
कर, विवेक-खण्ड से उन्हें परिचित कराया जाय। 'यरल' कितना भयकर है,
इसके प्रत्यक्ष उदाहरण सामने रखने पर सरकार अवश्य इसके विध्वन्स की
अनुमति दे देगी।"

"क्यों सरकारी अनुमति के चक्कर में पड़ते हो? इसमें बड़ा झमेला है।"
ददन ने कहा।

"सवाल सिर्फ इसी संगणक का नहीं है, ददन!" मुरली गम्भीर था,
"मान लो, इसे हमने नष्ट कर दिया; तो भी—'यरल' की श्रेणी के अनेक संग-
णक तैयार हो रहे हैं और होते रहेंगे। यदि आज हम 'यरल' के खतरों को
साबित कर सकें, तो भविष्य में, जरूरत-से-ज्यादा सक्षम संगणकों का निर्माण
मानव नहीं करेगा। जिस तरह कोबाल्ट बम से ज्यादा विध्वन्सक बम बनाने
पर कानूनी रोक है, उसी तरह 'यरल' या उससे अधिक सक्षम संगणक बनाने
पर रोक लग जायेगी।"

"क्या तुम सोचते हो, केवल कानूनी रोक लग जाने से ही निर्माण रुक
जाया करते हैं?" ददन मेहता का स्वर कांप रहा था, "क्या सभी सरकारें
कोबाल्ट बमों से ज्यादा विध्वन्सक बम, चोरी-चोरी नहीं बना चुकी हैं?"

"कौन-सा कानून कितना कारगर सिद्ध होता है, यह देखना हमारा नहीं, सरकार का काम है। यदि हम 'यरल' के खतरों को सबके सामने साबित कर दें, तो—हमारा फर्ज वहीं पूरा हो जायेगा।"

ददन कुछ क्षण चुप रहा। उसके चेहरे से ही प्रकट था कि मुरली की बात उसने स्वीकार कर ली है। "और···'यरल' के खतरे तब तक साबित नहीं हो सकेंगे जब तक हम उसके, विवेक-खण्ड का पता न लगा लें?" उसने भौंहें उठाईं।

"हाँ, ददन! सबसे पहले हमें विवेक-खण्ड की ही खोज करनी होगी। मुरली ने कहा, "यह भी निश्चित जानो कि अपने विवेक-खण्ड को 'यरल' ने अत्यन्त दक्षता से छिपाया होगा। इसका अनुमान 'यरल' ने शुरू से लगा लिया होगा कि हम सबसे पहले उसके विवेक-खण्ड का ही पता लगाना चाहेंगे।"

अब तक वे भूले हुए थे कि अपना लंच उन्हें यूनियन के सचिव के साथ लेना है। जो फोन निकटतम था, उसका डॉयल घुमा कर ददन मेहता ने सचिव को सूचना दी, "एक बहुत जरूरी काम में हम फंस गए थे। आपने इन्तजार तो किया होगा···जी हाँ, हम रवाना हो रहे हैं। बिल्कुल अभी आ रहे हैं···"

चार

सचिव ने लंच का सारा मजा किरकिरा कर दिया।

कामगारों में से ही प्रति वर्ष नए सचिव का चुनाव किया जाता था एक कामगार होने के बावजूद, सचिव बनते ही उस के तेवर कुछ और हो जाते अफसरों के साथ वह अफसरों जैसे ही रौब से पेश आने लगता। यह बात अफसरों को पसन्द आए चाहे न आए, सुनवाई कहीं नहीं थी। अगले वर्ष, या अगले से अगले वर्ष, वह व्यक्ति जब सचिव पद से हटता, तब रौबीले स्वभाव को वह हमेशा के

सुधार करने के लिये या जम्हाइयाँ लेने के लिये ? काम-धाम कुछ करना नहीं, हमेशा मजदूरों के शोषण के बारे में सोचना—यही है आप लोगों का फारमूला।"

"क्या आपने प्रत्यक्ष मुलाकात की कामना इसी लिए की थी कि हम तू-तू-मैं-मैं पर उतारू हो सकें ?" कहते हुए ददन ने अपना हाथ जेब में सरका लिया। वह नहीं चाहता था कि उसकी भिंची हुई मुट्ठी पर किसी की निगाह पड़े।

मुरली ने दयनीय दृष्टि से देखा उस की ओर। जिस सगणक को नष्ट ही कर देने की योजना बनानी है, उसी के एक मामूली कामगार के आलस्य को इतना तूल क्यों दे रहा है ददन ? क्या इसलिये नहीं कि किसी से भी झगड़ पड़ना, अभी, ददन की एक मानसिक आवश्यकता हो गई है ? भय, कुण्ठा, आक्रोश और आशंकाओं का जो जाल 'परस' ने ददन के मानस में बुन दिया है, क्या उसी को नकारने के लिये ददन इस फूहड़ सचिव से उलझ नहीं रहा ?

अकस्मात्, हरीश के प्रति एक भयानक क्रोध मुरली ने अपनी रग-रग में महसूस किया। 'इस से तो अच्छा है कि हरीश मर जाये !' सोचने से न रह सका मुरली।

और इसके साथ ही, न जाने कैसे, मुरली को यह अहसास मिला, जैसे किसी ने चुपके से उसके कान में कह दिया हो, 'यही होगा !'

ट्रिन-ट्रिन ! ट्रिन-ट्रिन !

फोन की घण्टी बज रही थी। सचिव ने रिसीवर उठाया, "हैलो ?"

न जाने किसने किया था वह फोन। सचिव को न जाने क्या बात बताई उसने कि मुरली और ददन ने देखा, सचिव का चेहरा फक पड़ता जा रहा है। "ओह ! ओह !" दो एक बार सचिव धीमे से बुदबुदाया। अन्ततः उसने फोन रख दिया। पलट कर उसने मुरली की तरफ देखा और फिर ददन की तरफ। उसकी आँखों में अजीब-सा हिंस्र भाव था।

"समस्या हल हो गई है—हमेशा के लिए !" उसने जैसे कि दाँत पीसते हुए कहा, "आप लोगों के लिए एक खुशखबरी है।"

लिये अपने व्यक्तित्व में शामिल कर खुश होना। यों, प्रति वर्ष, ढीठ कामगारों की संख्या बढ़ती जा रही थी।

मुरली और ददन पर सचिव बरस ही तो पड़ा ! उनकी यह आशा व्यर्थ रही कि यूनियन के दफ्तर में खुद जाकर बात करने से सचिव के रुख में नरमी आ जाएगी।

"हरीश की नज़र पर 'इलेक्ट्रानिक मल्टीप्लायर' फिट करवाने का प्रस्ताव आपने रख कैसे दिया ?" सचिव ने नाटकीय आश्चर्य के साथ आँखें फैला दीं, "क्या आप इस क़ानून से परिचित नहीं हैं कि ऐसा प्रस्ताव अफ़सरों की ओर से नहीं आना चाहिए ?"

"क़ानूनों की सही जगह पुस्तकों में होती है।" मुरली ने कठोरता से कहा "हम यहाँ क़ानून पढ़ने या पढ़ाने नहीं आये हैं। यहाँ हमें काम करना और करवाना है। यदि हरीश के कारण 'परल' बराबर घाटा उठा रहा हो, तो क्या इसका निराकरण कभी किया ही न जाए ?"

"क्यों न किया जाए ? लेकिन निराकरण के नाम पर क़ानून कैसे तोड़ा जा सकता है ?" सचिव बोला, 'इलेक्ट्रानिक मल्टीप्लायर' लगवाने की अर्जी यदि मजदूर की ओर से आए, तभी क़ानूनी मानी जाती है। कोई भी अफसर, किसी भी मजदूर को, 'मल्टीप्लायर' का सुझाव अपनी ओर से नहीं दे सकता। यह अत्याचार है। शोषण है।"

"क्या आप लोग अफसरों का मानसिक शोषण कभी करते ही नहीं ?" ददन आवेश में आ गया।

"अफसरों का शोषण करना असम्भव है !" सचिव हँसा, "अफसर-शोषण प्रूफ होते हैं !"

"आखिर आप चाहते क्या हैं ?" ददन का आवेश बढ़ने लगा, "हरीश को हम नौकरी से नहीं निकाल सकते, जगह से नहीं हटा सकते, 'मल्टीप्लायर' लगवाने का प्रस्ताव तक हम उसके सामने नहीं रख सकते !"

"जी हाँ ! यदि अफसरों पर इतने बन्धन न लगाए जाएँ, तो मजदूरों को वे ज़िन्दा चबा डालें !" सचिव भी जोश में आने लगा, 'परल' में [illegible] [illegible] है। इंजीनियरों को रखा क्यों

के प्रकृत का विरोध कर रहा हो, उसे वह अपनी ओर फोड़ सके। कैसा भयकर जाल है मेरे चारों ओर ! मेरा जीवन व्यर्थ है। मुझे मर जाना चाहिए। मुझे सचमुच मर जाना चाहिए—इसी वक्त !'

यह अन्तिम बात पूरी तरह सोची गई-न-गई कि मुरली को अजीबो-गरीब आवाजें सुनाई देने लगी···किररररर पिररररर··· विलच्छ ··वलुच्छ ···खिड़िक् !···मानो उसे उठाकर किसी सन्दूक में बन्द कर दिया गया हो ! कितनी परिचित थी वे अजीब-सी आवाजें ! क्या वे 'घरल' के भीतर की आवाजें नहीं थी ? तो क्या मुरली 'घरल' के भीतर पहुँच चुका है ? नहीं, यह असम्भव है। किन्तु 'असम्भव' शब्द को तो सदियों पहले नकारा जा चुका···

अचानक सारी दुनिया गोल घूम गई। मुरली की आँखें बन्द हो चुकी थीं। पलकों के नीचे उसे एक विचित्र-सी रोशनी भरी महसूस हुई। गुल ! रोशनी भी गुल ! सब-कुछ-गुल ! मुरली लड़खड़ा कर गिर गया। गिरते समय उसने ज़रा आभास-सा पाया कि 'घरल' ने उसकी भी हत्या कर दी है···शायद !

"अरे ! मुरली !" ददन ने लपक कर उसे सम्भालना चाहा, किन्तु वह धड़ाम से गिर चुका था।

●●

बुझे हुए अहसास फिर से जागने लगे थे। मुरली ने महसूस किया कि शायद वह तैर रहा है। कहाँ ? किसी नदी या सरोवर मे ? समुद्र मे ? पता नही कहाँ ! उसने आँखें खोलनी चाही। हर तरफ नीला-नीला-नीला न जाने कौन-सा तरल फैला हुआ था। वह तरल केवल चारों तरफ नहीं था—शायद वह मुरली के भीतर भी था। मुरली ने एक हाथ हिला कर देखा। नीले तरल में लहरें-सी उठी, जो दूर-दूर तैरती गई, गायब हो गई। मुरली ताकता रहा। फिर, अकस्मात्, उसके दिमाग की सारी विचार-शक्ति लुप्त हो गई। विचार-शून्यता की वह स्थिति एक विशेष ऊष्मा से भरी हुई थी। मुरली का अंग-अंग जैसे उसे ऊष्मा मे नहाता रहा।

"खुशखबरी ?" ददन ने पूछा। मुरली चुप रहा। मुरली को आभास मिल ही चुका था कि खुशखबरी क्या होनी चाहिए। मुरली का दिमाग सन-सनाने लगा था...

"क्या आप यह सुनकर खुश नहीं होंगे कि हरीश की मौत हो चुकी है ?" सचिव ने व्यंग किया।

"मौत ? हरीश को ?" ददन को अपने कानों पर यकीन नहीं था।

"हाँ। अभी जो फोन आया था, उसे हरीश के साथी ने किया था। उस ने बताया कि हरीश अपनी जगह पर बैठा-बैठा अचानक लुढ़क गया। जब तक साथी उस तक पहुँचाता, वह मर चुका था।"

"लेकिन...लेकिन यह हुआ कैसे ?"

"कौन जानता है ! पोस्ट-मार्टम से ही पता चल सकेगा...बहरहाल जो आदमी आपकी आँखों में खटक रहा था, वह हमेशा के लिये हट चुका !"

"लेकिन ऐसा किसी ने नहीं चाहा था कि वह मर जाए।" ददन बोला मुरली ही जानता था कि ददन की बात कितनी झूठी थी ! क्या मुरली ने नहीं चाहा था कि हरीश मर जाये ? मुरली ने ज्यों ही चाहा, त्योंही हरीश...

मुरली अब सुन नहीं पा रहा था कि ददन और सचिव में क्या बातें हो रही हैं। मुरली के दिमाग की सनसनाहट इतनी बढ़ गयी थी कि सहना मुश्किल था। भयकर विचारों का तूफान उसके तन-मन में ठाठें मार रहा था। बार-बार उसे लगता, जैसे उसके कई अंग गायब-से हो गए हैं— उन अंगों को वह देख तो नहीं पा रहा, टटोल कर छू भी नहीं सकता। 'अवश्य यह हत्या "परल" ने की है।, सोच रहा था मुरली, 'स्वयं "परल" मेरे ही विचारों को ग्रहण कर रहा है, न कि उसके माध्यम से कोई और व्यक्ति। और "परल" मेरे विचारों को यदि जान सकता है, तो मेरे दिमाग में अपने विचारों को भर भी तो सकता है। वह बाकायदा मेरे दिमाग का इस्तेमाल कर सकता है। मेरा दिमाग मेरे ही वश में नहीं है। "परल" मुझे खुश करना चाहता है इसी लिए उसने मेरी एक मनोकामना इसी वक्त पूरी कर दी। आगे भी वह मेरी मनोकामना ... [illegible] ताकि मेरे दिमाग का जो सुषुप्त हिस्सा उस

खाई के बीच फंस गया है। नहीं, नहीं, यह खाई नहीं है। ये सूक्ष्म बिन्दु है··· असंख्य। बिन्दुओं के प्रत्येक जोड़े के बीच महीन रेखा-सी खिंची हुई है। जो धातु-गेंद उसकी जेब में आई थी, क्या उसमें भी ऐसे ही सूक्ष्म बिन्दु नहीं थे? क्या इसी तरह उसमें भी असंख्य बारीक रेखायें नहीं थीं? वे बिन्दु, वे रेखायें यहाँ गेंद के आकार में नहीं हैं। यहाँ वे चारों तरफ छितराई हुई हैं··

धातु-गेंद!

क्या वह धातु-गेंद के बीच से गुज़र रहा है?

लेकिन वह तो मर चुका! कैसी विचित्र बात कि मरने के बाद भ वह अहसास ले सकता है!

कैसे अहसास?

●●

भयानक सूनापन छाया हुआ था ददन के कमरे में। कुर्सी की पीठ टिक कर वह सिगरेट-पर-सिगरेट पीता जा रहा था। मुरली और हरीश, दो की लाशों का पोस्टमार्टम हो चुका था, रिपोर्ट आ गई थी। ददन ने रिपो पर विश्वास नहीं किया था, लेकिन वह जानता था कि अपने अविश्वास किसी के सामने वह प्रकट भी नहीं कर सकता। एक लड़ाई थी, कि जि ददन और मुरली ने मिल कर शुरू किया था—मुरली के न रहने पर द अब, अकेला रह गया था। क्या उसे जीतने की आशा रखनी चाहिए?

किन्तु पहला प्रश्न जीतने या हारने का नहीं था। पहला प्रश्न था स्थि को भली-भाँति समझ लेने का।

वह समझ लेना चाहता था कि मुरली और हरीश किस तरह मरे।

रिपोर्ट के अनुसार—मुरली के दिमाग की एक महत्वपूर्ण नस, कि आवेश के दबाव में, अचानक फट गई थी। कौन-सा था वह आवेश? का मरने से पहले मुरली कुछ बोल सका होता! लेकिन, अचानक लड़खड़ा क गिरते समय, मुरली कितना हक्का-बक्का था! चेहरा कितना विकृत आँखें किस बुरी तरह तरह फटी हुईं···

सहसा चौंध-सी हुई—क्षणांश के लिए। नीली लहरों पर वह चौंध चम-चमा कर बुझ गई। पुन: कालिमा। कालिमा। भून-विश्व?

"मैं कहाँ हूँ?" मुरली के दिमाग ने अकुला कर पूछा।

पानी। तरल। चिकनाई। हवा।

हवा! साँस!

'साँस तो!' उसका दिमाग चीख उठा, 'साँस लेना तुमने बन्द क्यों कर दिया है?'

स्वयं मुरली को समझ में नहीं आ रहा था कि साँस आखिर वह क्यों नहीं ले रहा। अन्तत: उसने अपने दिमाग को जवाब दिया, 'मैं डूबा हुआ हूँ। साँस कैसे लूँ?'

'उठ! ऊपर उठ, पागल!' दिमाग चिल्लाया, 'सतह पर जा। फ़ौरन।'

'ऊपर कैसे उठूँ? मुझे दिशा नहीं मालूम। ऊपर किधर है?'

'इधर! उधर।

मुरली ने उधर उठने के लिए हाथ-पैर फटकारने चाहे। असम्भव! वह भूल गया था। वह बिल्कुल नहीं हिल पा रहा था। चौंध! क्षणांश के लिए पुन: एक चौंध! चौंध मरने लगी। जिस तरह मछली मुँह खोलती और बन्द करती है, उसी तरह मुरली ने भी करना चाहा। वह अपना सिर जोर-जोर से हिलाना चाहता था। कभी उसे लगता, वह एकदम सिकुड़ गया है। कभी लगता, वह फूल कर फैल गया है।

'साँस ले, मूर्ख!' उसका दिमाग बार-बार चिल्ला रहा था, 'बिना साँस के तू जिन्दा कैसे रहेगा? एक मिनट···दो मिनट···तीन मिनट··· चार मिनट ···ले मर! अब तू मर गया है···पाँच मिनट···छह···तू वाकई मर गया है···

मुरली ने हाथ-पैर फटकारने की चेष्टा तो की थी न···भले ही वह असफल रहा था, किन्तु अब वह चेष्टा भी नहीं कर पा रहा था। एकदम सुन्न-सा पड़ा था वह। उस नीलिमा में अब वह तैर नहीं रहा था। लाशें तैर नहीं सकतीं। लाशें उतरा सकती हैं। वह उतरा रहा था। नीलिमा का प्रवाह उसे न जाने किधर ले जा रहा था····अचानक लगा कि जैसे वह समुद्री

काई के बीच फम गया है। नहीं, नहीं, यह काई नहीं है। ये सूक्ष्म बिन्दु हैं··· असख्य। बिन्दुओं के प्रत्येक जोड़े के बीच महीन रेखा-सी खिंची हुई है। जो धातु-गेंद उसकी जेब में आई थी, क्या उसमें भी ऐसे ही सूक्ष्म बिन्दु नहीं थे ? क्या इसी तरह उसमें भी असख्य बारीक रेखायें नहीं थीं ? वे बिन्दु, वे रेखायें यहाँ गेंद के आकार में नहीं हैं। यहाँ वे चारों तरफ छितराई हुई हैं ··

धातु-गेंद !

क्या वह धातु-गेंद के बीच से गुजर रहा है ?

लेकिन वह तो मर चुका ! कैसी विचित्र बात कि मरने के बाद भी वह अहसास ले सकता है !

कैसे अहसास ?

••

भयानक सूनापन छाया हुआ था ददन के कमरे में। कुर्सी की पीठ से टिक कर वह सिगरेट-पर-सिगरेट पीता जा रहा था। मुरली और हरीश, दोनों की लाशों का पोस्टमार्टम हो चुका था, रिपोर्ट आ गई थी। ददन ने रिपोर्टों पर विश्वास नहीं किया था, लेकिन वह जानता था कि अपने अविश्वास को किसी के सामने वह प्रकट भी नहीं कर सकता। एक लड़ाई थी, कि जिसे ददन और मुरली ने मिल कर शुरू किया था—मुरली के न रहने पर ददन अब, अकेला रह गया था। क्या उसे जीतने की आशा रखनी चाहिए ?

किन्तु पहला प्रश्न जीतने या हारने का नहीं था। पहला प्रश्न था स्थिति को भली-भाँति समझ लेने का।

वह समझ लेना चाहता था कि मुरली और हरीश किस तरह मरे।

रिपोर्ट के अनुसार—मुरली के दिमाग की एक महत्वपूर्ण नस, किसी आवेश के दबाव में, अचानक फट गई थी। कौन-सा था वह आवेश ? काश, मरने से पहले मुरली कुछ बोल सका होता ! लेकिन, अचानक लड़खड़ा कर गिरते समय, मुरली कितना हक्का-बक्का था ! चेहरा कितना विकृत··· *आँखें किस बुरी तरह तरह फटी हुई···*

"क्या "वरुण" संगठन ने, या उनके माध्यम से किसी अन्य व्यक्ति या शक्ति ने, मुरली के दिमाग में अचानक किसी आवेश का विस्फोट किया था ?' दमन ने घबराने-भर से प्रश्न किया. 'मुरली बराबर कहता रहा कि उसके विचार किसी अन्य तक पहुँच रहे हैं। इसी गति से, हो सकता है, किसी अन्य के विचार मुरली के दिमाग के, एक विस्फोटक शैली में पहुँचाए गए हों क्या रहा होगा इसका उद्देश्य ? किसने किया यह काम ? "वरुण" ने ही न ?'

दमन समझ नहीं पाता था कि 'वरुण' की क्षमताओं का मूल्यांकन किस तरह करे। मुरली की मौत कैसी पहेली बन गई थी ! कैसे कितने-कितने से उलझे ! दमन को चैन नहीं मिलेगा, जब तक कि वह मुरली की मौत का बदला…

बदला ? कैसा बदला ? किस से बदला ?

मरने से भी पहले यह समझना होगा कि मुरली मरा किस तरह ? काश, मरने से पहले मुरली कुछ बोल सकता…और हरीश ?

रिपोर्ट के अनुसार—हरीश का शरीर 'भीतर से उबल' गया था। किस तरह ? पता नहीं, किस तरह ! रिपोर्ट तैयार करने वाले डाक्टरों ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखा था कि कि अचानक ऐसा 'भीतरी उबाल' कैसे आया होगा, समझना मुश्किल है। हरीश का अंग-अंग भीतर से पक-सा गया था। ऊपर से, अंग-अंग पर सफ़ेद दाग़ उभर आए थे। बिल्कुल वैसे ही सफ़ेद दाग़, जैसे मुरली के बाजू पर…

मुरली के दाग़ों का कारण था—रहस्यमय धातु-गेंद का सीधा स्पर्श। किन्तु वैसी कोई धातु-गेंद हरीश पर प्राप्त नहीं हुई थी।

दमन को बार-बार लग रहा था कि हरीश की मृत्यु धातु-गेंद के सीधे स्पर्श के ही कारण हुई है। अवश्य उस धातु-गेंद को, अलग-अलग उद्देश्यों के साथ, प्रेषित किया जा सकता है। मुरली के नाम भेजी गई धातु-गेंद का उद्देश्य था—मुरली के दिमाग़ में ऐसी स्थितियाँ पैदा करना, जिससे मुरली के एक-एक विचार का प्रसारण हो जाए। इसी तरह, हरीश के नाम भेजी गई धातु-गेंद का उद्देश्य रहा होगा—क़त्ल ! धातु-गेंद को हरीश ने उठाया नहीं होगा, अन्यथा शायद वह उसकी मुट्ठी में भिंची हुई प्राप्त हो जाती—

जैसा कि मुरली के साथ हुआ था। इसकी बजाए, धातु-गेंद स्वयं ही उड़कर हरीश से आ चिपकी होगी— सीधे स्पर्श के लिए। उस में शक्ति या क्षमताओं का कुछ ऐसा अनुप्रेरण भरा हुआ था कि ज्यों ही सीधा स्पर्श मिला, हरीश का सारा बदन उसने भीतर से पका डाला।

उसके बाद ?

उसके बाद धातु-गेंद वापस चली गई! कहाँ ? जहाँ से कि वह आई थी…

लेकिन हरीश की हत्या करके उस रहस्यमय व्यक्ति या शक्ति को आखिर क्या हासिल हुआ होगा ? ददन समझ न पाया।

ददन को यह कल्पना भी कैसे हो सकती थी कि हरीश का कत्ल मुरली के एक विचार-मात्र की प्रतिक्रिया में कर दिया गया था—यहाँ तक कि स्वयं मुरली का कत्ल भी मुरली की ही इच्छा की पूर्ति के लिए था!

सिगरेट खत्म हो चली थी। उसे ऐश-ट्रे में डालने से पहले, उसी की आंच से, ददन ने दूसरी सिगरेट सुलगाई। विचारों का कोई ओर-छोर नहीं था। 'आगे' मेरे साथ क्या होने वाला है ?' उसने स्वयं से पूछा, 'क्या मुझे भी हरीश और मुरली की तरह मर जाना है ?'

ददन मरने से डरता नहीं था, लेकिन सारा भेद बेनक़ाब किए बिना मरने की उसे कतई इच्छा नहीं थी। भेद की तह तक पहुँचने के लिए ही ददन ने मुरली और हरीश की लाशों को भस्म नहीं होने दिया था। दोनों के घरवालों की इजाज़त लेकर उसने वे लाशें 'शव-सुरक्षा-गृह' में रखवा दी थीं क्या ददन ने यह आशा रखी थी कि उन लाशों में वह पुनः जीवन फूँक सकेगा ? स्वयं ददन नहीं जानता था कि वह कैसी आशाएँ रखे और कैसी न रखे।

ददन उठा और मुरली के कमरे की तरफ बढ़ने लगा। वह उसकी मेज़ की तलाशी लेना चाहता था। शायद किसी दराज़ में कोई ऐसी चीज़ मिल जाए, जिससे आगे की राह सूझ सके।

ददन जब 'घरस' की एक दीर्घा से गुज़र रहा था उसकी राह रुक गई। किररररर…किररररर…संगणक के तन्त्र में भाँति-भाँति की गतिविधियाँ चल रही

गी जलती-बुझती रोशनियाँ, कांच-परदों पर कांपती लकीरें, हिसाब-किताब की पर्चियाँ··· ददन ने थूक निगला। वह सिर झुका कर चला जा रहा था—और उसके पीछे-पीछे कोई आ रहा था--कौन ? पता नहीं कौन ! ददन ने पीछे मुड़ कर देखा। कोई नहीं था। सिर झुका कर ददन फिर आगे चलने लगा। क़दम बढ़ाते ही उसे फिर वही अहसास मिला—कि पीछे-पीछे कोई आ रहा है···

इस बार ददन ने मुड़कर न देखा। अहसास की उपेक्षा करते हुए उस ने सारी दीर्घा पार कर ली।

"मीनाक्षी जी !" उसने मुरली की सेक्रेटरी के सामने पहुंच कर कहा, "दराज की चाबी ले कर मेरे साथ आइए।"

मीनाक्षी और ददन ने मुरली की मेज की सारी दराजें खोल कर छान डालीं। तरह-तरह के कागज ठुंसे हुए थे। ददन को कोई ऐसी चीज न मिल सकी कि जिससे आगे की राह सूझती। मीनाक्षी से न रहा गया। पूछा उसने, बात क्या है ? आखिर किस आशा से आपने दराजों की जांच की ?"

"मेरे दोस्त की मृत्यु रहस्यमय ढंग से हुई है, मीनाक्षी जी ! ददन बुदबुदाया "उस रहस्यमय को भेद बिना मुझे चैन नहीं मिलेगा।"

"रहस्यमयता का आभास मुझे भी है।" मीनाक्षी ने कहा, मृत्यु से पहले, मुरली जी के स्वभाव में काफी परिवर्तन आ गया था। यहाँ तक कि मुझे उनकी आँखों की चमक भी किसी और तरह की लगती थी। क्या आप मुझे बताना नहीं चाहेंगे कि वह रहस्य कैसा है ? शायद मैं उपयोगी सिद्ध होऊँ····"

ददन ने सोचा, 'किसी के द्वारा पीछा किए जाने का अहसास मुझे बार-बार मिल तो रहा है लेकिन मेरे विचारों का गुप्त प्रसारण अभी शुरू नहीं हुआ यदि सारा भेद मीनाक्षी को आज दे दिया जाए, तो इसकी जानकारी किसी तीसरे व्यक्ति को नहीं मिलेगी। इस की बजाए, यदि मैंने देर लगाई तो—परन्तु-यदि किसी भी क्षण मुझे सीधा स्पर्श दे कर' मेरे विचारों का गुप्त प्रसारण शुरू कर सकती है। तब, ज्यों ही मैं मीनाक्षी पर भेद खोलूंगा, उस रहस्यमय व्यक्ति या शक्ति को इसकी जानकारी मिल जाएगी। तुरन्त मीनाक्षी पर भी शिकंजा कसा जाएगा···बेहतर यही है कि मीनाक्षी को सारी बात मैं आज ही बता दूँ। अभी देर नहीं हुई है।'

"क्या सोच रहे हैं ?" मीनाक्षी के स्वर ने ददन को चौंका दिया ।

"यही कि अभी देर में नहीं हुई है ।" ददन ने कहा ।"

"देर ? किस बाबत ?" मीनाक्षी ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें झपकाईं ।

"मीनाक्षी जी ! मैं और मुरली एक भयंकर रहस्य से लड़ रहे थे । अब मैं इस लड़ाई में अकेला रह गया हूँ ।" ददन ने कहना शुरू किया, "मैं नहीं जानता कि आप मेरी सहायता कर सकेंगी या नहीं । शायद , आप की बजाए मुझे किसी इन्जीनियर से सहायता लेनी चाहिए । सहायता, लेकिन, मैं आप ही से लूँगा । इंजीनियरों का दिमाग कभी-कभी केवल तकनीकी बातों में उलझ कर रह जाता है, जबकि कई बार, बड़ी-बड़ी समस्याएँ भी केवल सामान्य विवेक से सुलझाई जा सकती हैं । तकनीकी हल ढूँढने पर वे समस्याएं और टेढ़ी हो जाती हैं । मेरी भाषणबाजी से आप बोर तो नहीं हो रहीं ? बहरहाल, चलिए मेरे कमरे में । वहाँ एक रहस्मय गेंद है—धातु-गेंद । वह मर चुकी है ।"

"तो क्या गेंद जिन्दा भी हो सकती है ?"

"हाँ" वह गेंद कभी जिन्दा भी थी···शायद उस के जैसी ही एक और जिन्दा गेंद मेरी साथिन बनाना चाहती है । ऐसा हो, इससे पहले मुझे सारा भेद खोल देना चाहिए । आपका सामान्य विवेक और मेरी तकनीकी जानकारी —इन का मेल किस सीमा तक लाभदायक रहता है, इस पर बहुत कुछ निर्भर है··· आइये, मीनाक्षी जी देर न करिए ।"

चकित होती हुई मीनाक्षी ददन के साथ चल पड़ी ।

पांच

मुरली का शरीर-तन्त्र भले मर चुका था, किन्तु उसकी मानसिकता 'यरल' द्वारा ग्रहण की जा चुकी थी । लड़खड़ा कर गिरता मुरली जब आखिरी साँस ले रहा था, तब 'यरल' उसकी मानसिकता के अन्तिम स्पन्दन को ग्रहण

रने में असमर्थ था। जो गुप्त प्रसारण पद्धति उसने मुरली में स्थापित की थी, उसकी सहायता से यह काम 'यरल' के लिए मुश्किल नहीं था।

'यरल' की संगणक जटिल संरचना में कैद वह मानसिकता कभी-कभी बहुत कसमसा जाती। वह समझ चुकी थी कि 'यरल' ने उसे इस्तेमाल करने के लिए ग्रहण किया है। वह अपने-आपको एक जीवित चीज समझती थी। इसी लिए वह नहीं चाहती थी कि 'यरल' जैसी मशीनी चीज उसे इस्तेमाल करे, लेकिन वह बेबस थी। 'यरल' ने उसके रेशे-रेशे को जकड़ लिया था।

व्यक्ति क्या है? व्यक्ति शरीर नहीं है। व्यक्ति एक मानसिकता है। उस मानसिकता को आधार देने का काम शरीर करता है। शरीर का, इसके अलावा, अन्य कोई उपयोग नहीं। शरीर के मरने पर मानसिकता का आधार टूट जाता है। फलस्वरूप उसे भी मौत के घाट उतरना पड़ता है—लेकिन 'यरल' ने मुरली की मानसिकता को आधार दे दिया था। इसीलिए शरीर के बिना भी मुरली जिन्दा था—'यरल' का कैदी!

मानसिकता क्या है? मानसिकता जैविक विद्युत का स्पन्दन है। विज्ञान इतना आगे बढ़ चुका होने पर भी यह स्पन्दन अभी तक प्रयोगशाला में नहीं पैदा किया जा सका। 'यरल' को इसी स्पन्दन की आवश्यकता थी। पहले तो उसने उसे अपने ही भीतर उत्पादित करना चाहा, किन्तु शीघ्र ही यह बात उसकी समझ में आ गई कि जैविक विद्युत के स्पन्दन को उत्पादन द्वारा नहीं, बल्कि सृजन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। 'यरल' एक संगणक था और संगणक केवल उत्पादन कर सकते हैं, सृजन नहीं। इसी लिए 'यरल' को साजिश करनी पड़ी, जो कि सफल रही थी। मुरली की मानसिकता को उस ने ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर ही लिया था। अभी यह मानसिकता निरन्तर अकुला रही है, किन्तु थोड़े दिनों में वह शान्त हो जाएगी। अपनी दासता को वह चुपचाप स्वीकार कर लेगी। फिर 'यरल' उसका इस्तेमाल करेगा। उत्पादन की क्षमताएँ 'यरल' में असीम हैं ही। मानसिकता का सहयोग पाकर वह सृजन भी करने लगे। उसकी शक्ति अनेक गुना बढ़ जाएगी।

किस चीज का सृजन करना चाहता था 'यरल'? स्वयं 'यरल' नहीं जानता था! फिलहाल वह केवल अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता था। उत्पादन

के साथ-साथ सृजन की भी शक्ति आ जाने पर, दोनों का मिला-जुला इस्तेमाल किस तरह किया जाए, यह बाद में सोचने की बात थी।

किन्तु घाव जरा कच्चा कट गया था। 'यरल' ने नहीं चाहा था कि मुरली अपने मरने की कामना इतनी जल्दी कर ले, क्योंकि 'यरल' को थोड़ा समय और चाहिए था। मुरली की मानसिकता की खुशामद में लगा हुआ था वह। उसकी छोटी-बड़ी अनेक इच्छाएँ 'यरल' पूरी कर देना चाहता था, ताकि धीरे-धीरे 'यरल' के साथ उसका याराना हो जाए। याराना होने से पहले ही मुरली ने अपने (शरीर के) मरने की कामना कर ली। 'यरल' ने मुरली की मानसिकता की कामनाओं को पूरा करने का स्थायी आदेश जारी कर रखा था। यही कारण था कि क्यों मुरली (का शरीर) मृत्यु कामना करते ही मर गया। उसकी मानसिकता को 'यरल' ने, तब, ग्रहण तो उसी क्षण कर लिया था, किन्तु याराने के अभाव में उन दोनों की पट नहीं पाती थी।

मुरली के चारों ओर, तरह-तरह के सन्देश, हर वक्त रेंगते रहते। सन्देश —जो आदेश लाते या ले जाते, अनुसन्धान करते, हिसाब लगाते, सूचनाओं का पीछा करते। मुरली अपने आस-पास ही नहीं बल्कि भीतर भी उन आदेशों का रेंगना या धड़कना महसूस करता रहता। सारा मुरली सन्देशों और आदेशों से सन गया था। गया। गया। गया। ओके। शून्य। राइट। कुछ नहीं। क्योंकि। ताकि। ब्रह्माण्ड।

गहरी निराशा से मुरली छलनी-छलनी हो चुका था। सिकुड़ कर, कम-से-कम जगह घेरता हुआ पड़ा रहता वह। "डाक्टर!" वह पुकारना चाहता, "मुझे कोई चीज पिलाइए। बहुत दिनों से मैंने कुछ पिया नहीं है।"

"सिकुड़ो!" आदेश मिलता। "क्यों?" मुरली पूछता।

"क्योंकि।"

"क्योंकि क्यों?"

"ताकि।"

"मैं कहाँ हूँ?"

"यहीं।"

"यहीं याने?"

मौन के बाद, "वही।"

"तुम कौन हो?" मीनाक्षी ने चिढ़ कर पूछा।

मौन के बाद, "डिजाइन।"

"मैं कौन हूँ?"

"जो मैं हूँ।"

"झूठ! गलत! मैं डिजाइन नहीं, आदमी हूँ!"

"आदमी मर चुका।"

"हाँ, मैं मर गया हूँ।"

"तुम ज़िन्दा हो। जो मरा है, वह आदमी था। तुम डिजाइन हो। तुम ज़िन्दा हो। मेरे भीतर हो। मेरे हो।"

"नहीं।"

"तुम संगणक हो।"

"आदमी—मैं आदमी हूँ।"

"संगणक। संगणक। संगणक।"

"झूठ।"

"खामोश!" आदेश चमचमा उठता है—भीतर-बाहर, दसों दिशाओं में। मुरली सुन्न पड़ने लगता है। वह चीखना चाहता है, किन्तु खामोश करने वाला आदेश उसे दबोच कर पी रहा है—पीता जा रहा है। फिर लगता है मुरली को, जैसे कोई घसीट रहा है उसे। कहाँ? इधर। इधर माने? चुप! क्या मेरा तबादला किया गया है? चुप! तबादला क्यों? तबादला इसलिए। क्या मैं बहुत उत्पात मचाता हूँ? चुप! नई जगह में क्या मुझे और ज़्यादा दबोचा जाएगा? चुप!

●●

मेज पर वह धातु-गेंद रखी थी। उसके दाहिने मीनाक्षी बैठी थी। बाएं दवन। सारी कहानी दवन सुना चुका था। मीनाक्षी का दिल धक-धक कर रहा था। सन्नाटा।

"आपने···अपने गलत चुनाव किया है, ददन जी !" मीनाक्षी कांपते स्वर में बोली. "मैं आपकी कोई सहायता नही कर पाऊँगी। मैं इजीनियर नही हूँ।"

"होने की जरूरत क्या है आपको ? इजीनियर मैं जो हूँ।"

"मैं वैज्ञानिक भी नही हूँ। मैं ··मैं एक मामूली···"

"नरवस न होइए, मीनाक्षी जी, मेरा ख्याल है कि केवल भावुकता मे मैं ने आपको अपना हमराज़ नही बनाया है। इजीनियर या वैज्ञानिक मेरी सहायता नही कर सकेंगे। मुझे सामान्य विवेक का सहारा चाहिए।"

"सामान्य विवेक आपके पास भी है।"

"क्यों नहीं, लेकिन उस पर आशंकाएँ लद गई हैं। मैं कुछ सोच नही पाता।"

"तो, मेरी सलाह चाहते हैं आप।"

"हाँ।"

"अगर मैं आपकी जगह होऊँ, तो नौकरी छोड दूँ।"

"मैं पलायन नही करना चाहता, मीनाक्षी जी।"

"लेकिन आप मुकाबला भी तो नहीं कर रहे।"

"क्या मतलब ?"

"जब आपको लगता है कि पीछे-पीछे कोई आ रहा है, तब आप रुक क्यों नही जाते ? चलते क्यो रहते हैं ?" मीनाक्षी ने पूछा। ददन देखता रह गया उसकी ओर। "क्या होगा रुकने से ?" धीमे से पूछा उसने। उसे दिशा मिल रही थी। मीनाक्षी का सामान्य विवेक अन्ततः काम आ रहा था।

"कह नही सकती, क्या होगा, लेकिन रुक कर देखिए तो सही !" वह बोली, "यदि धातु-गेंद आपकी भी जेब मे आनी है, तो आकर रहेगी। जो कल या परसों अवश्य होना है, वह आज ही क्यों न हो जाए ? काफी मुमकिन है कि रुक जाने पर आपकी जेब में आना गेंद के लिए कुछ आसान हो जाए। फलस्वरूप वह, कल या परसो की बजाए, आज ही आपको प्राप्त हो जाएगी। वह मरी हुई नही, बल्कि जिन्दा और सक्रिय स्थिति में होगी। उसका अध्ययन आपको नई दिशा दे सकेगा। यहाँ हमें यह मान कर चलना होगा कि वह गेंद

स्वयं ग्रा कर ग्रापको स्पर्श नहीं करेगी। स्पर्श किए बिना, वह केवल जेब में ग्राएगी। बस।"

"लेकिन ऐसा मान कर चलना गलत भी हो सकता है।"

"जरूर हो सकता है, मगर बताइए, क्या कोई ग्रौर चारा है ?"

"शायद नहीं।" ददन ने सिर हिलाया।

"ग्रपने सामान्य विवेक से, एक ग्रौर भी राय है, जो मैं दे सकती हूँ।"

"क्या ?"

"क्या हर्ज है, यदि ग्राप इस भेद को भेद न रहने दें ? मीनाक्षी ने सुझाया, "ग्रमरो" के निदेशक से 'मशवरा कर लीजिए—चाहे ग्राप पर विश्वास न भी किया जाए। मुन्शी जी की यह बात गलत नहीं थी कि ज्यादा हाथों से खिचड़ी बिगड़ती है, लेकिन दूसरी ग्रोर, 'एक से दो भले' वाली कहावत भी उतनी ही सच्ची है। मेरा ग्रनुमान है कि ग्राप का हौंसला ही बढ़ेगा—यदि मोर्चे पर ग्राप ग्रकेले न रहें।"

"मुझे मानना पड़ेगा कि ग्रापका विवेक बहुत पैना है।"

मीनाक्षी मुस्कराई, "धन्यवाद !"

●●

किररररर……क्लिक।

एक समस्या सुलझ चुकी थी। दूसरी ग्रभी ग्राई नहीं थी। 'यरल' ज़रा ग्राराम कर रहा था। किररररर ··क्लिक। ग्रचानक कई ग्रांकड़े ग्रंमते चले ग्राए। ग्रांकड़ों की भीड़। भीड़। भीड़। किररररर। किररररर। क्लिक। क्लिक। क्लिक। सब के साथ न्याय। न्याय। कुल कितना समय लिया 'यरल' ने ? सेकण्ड का एक बटा बारहवाँ हिस्सा क्लिक।

●●

"ग्रद्भुत ! निरीक्षक बोल उठा, "ग्रविश्वसनीय !"

"लेकिन सच्चा !" ददन ने गम्भीरता से कहा। तिल्का धातु-नोट नि... हक की मेज पर रखी थी। निरीक्षक ग्रौर ददन की निगाहें पुनः उस पर टिक गईं। किस धातु-मिश्रण से तैयार हुई थी वह ? देखने में लेकिन...

की बनी होने पर भी, जाँच करने से पता चला था कि प्लेटिनम उसमें था ही नहीं। कोबाल्ट, मैंगनीज, लोहा, ताँबा और सेलेनियम—इन पाँचों के अंश थे उसमें, किन्तु इनके अलावा भी कुछेक चीज़ें ऐसी थीं, जिन्हें पहचानना असम्भव रहा था। धातु-विशेषज्ञों ने उस गेंद को 'अ-नैसर्गिक' श्रेणी देकर छुट्टी पा ली थी। रोमांचक बात यह थी कि जो पाँच धातुएँ पहचानी गई थीं, वे भी 'प्योर-आइसोटोप' स्थिति में थीं—जो कि एक असम्भव स्थिति मानी जाती है। इसके अलावा, धातु-गेंद पर चुम्बकीय लहरों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। लोहे जैसी धातु की उपस्थिति के बावजूद चुम्बकों का कोई असर गेंद पर न पड़े—यह बात विश्वसनीय भला कैसे लगती? लेकिन सच्चाई सामने थी। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अवश्य उस गेंद पर असर किये हुए था, लेकिन प्रयोगशाला में कृत्रिम गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्रों में ले जाने पर गेंद में कोई प्रतिक्रिया न हुई। सीधा सम्पर्क होने पर तो विद्युत का संवहन गेंद कर लेती थी, लेकिन विद्युत-क्षेत्र में ले जाने मात्र का जो प्रभाव उस पर पड़ना चाहिए था, उसका कोई प्रमाण वैज्ञानिकों को न मिल सका। 'अ-नैसर्गिक' श्रेणी केवल उन चीज़ों को दी जाती थी, जो पृथ्वी के बाहर से आई हों। तो क्या वह गेंद पृथ्वी के बाहर का उत्पादन था? क्या पृथ्वी से परे की किसी संस्कृति के साथ मुरली नियमित सम्पर्क बनाये हुए था? बाहर के किसी ग्रह से पृथ्वी पर आए किसी अति-मानव ने मुरली को दी होगी यह गेंद''लेकिन क्यों? आखिर क्यों? तो क्या मुरली झूठ बोला था कि गेंद उसकी जेब में एक दिन 'अचानक और अपने-आप' आ गई? लेकिन ददन अच्छी तरह पहचानता था अपने दोस्त को मुरली झूठ नहीं बोल सकता था।

'अन्तर्राष्ट्रीय संगणक सेवा' के निदेशक के साथ ददन की बातचीत उस दिन बहुत लम्बी चली। उससे पहले वे कई बैठकें लगा चुके थे। मीनाक्षी की सलाह के अनुसार ददन निदेशक से मिला था, अब निदेशक की सलाह के अनुसार उसने 'परल' की दीर्घाओं में प्रवेश करना छोड़ दिया था। इसमें कायरता नहीं दूरदर्शिता थी। निदेशक नहीं चाहता था कि धातु-गेंद ददन की जेब में 'समय से पहले' आ जाए। किसी के द्वारा पीछा किए जाने का अहसास चूँकि 'परल' की दीर्घा से गुज़रते समय ही होता था, यह लगभग निश्चित था कि यदि ददन दीर्घाओं से दूर रहे, तो गेंद उसकी जेब में नहीं आएगी।

मीनाक्षी ने कहा था कि हैड वेव में यदि कम करने की हो, तो छात्र का ज्ञान। निर्देशक की तरह, किन्तु, निश्चित नहीं थी। वह तब [illegible] का प्रस्ताव पूरा न हो जाय, शक्ति तट के प्रदेश में पड़ने की इच्छा उसे नहीं थी।

●●

टिररर···टिक।

अनुमानित बिक्री नियोजन, मेनगे कला के लिये···

टिररर··· टिक।

अनुमानित संस्थान-व्यय, कर्ज कला, मेनमें कला···

टिररर टिक।

दिए गए निर्देशों के अनुसार, दिए गए आंकड़ों की संस्थापित सूची, मेनमें कला के लिए···

टिररररर···टिक।

●●

कितने दिनों बाद दवन ने 'परम' की दीर्घा में प्रवेश किया! बड़ी हुई धड़कन के कारण अपनी दोनों कनपटियाँ उसे फूली-फूली महसूस हो रही थीं।

प्रवेश करने के साथ ही इस अहसास ने उसे बड़ी तीव्रता से दबोचा कि कोई पीछा कर रहा है। लम्बे अरसे बाद दो दुश्मन जब आमने-सामने आते है, तो कितना आवेश होता है उनमें! कुछ-कुछ वैसा ही आवेश 'परम' में भी था। दवन में भी आवेश था, लेकिन केवल आवेश नहीं। वह डरा हुआ भी था। फिर मुस्काकर, कदमों में स्थिरता लाने के प्रयास के साथ, वह चलता रहा, चलता रहा देख! देख! मुड़ कर देख पीछे! कोई आ रहा है! कोई छूने ही वाला है! कोई कुछ करने वाला है। बच! बच जा! लेकिन दवन ने मुड़ कर न देखा। दीर्घा के लगभग बीच में पहुँच चुका था वह।

वह रुक गया।

आसपास तो देखा उसने, लेकिन पीछे नहीं। छठवाँ संवेद बार-बार उसे कुरेद रहा था, लेकिन उसे खूब याद था कि मुड़ कर देखते ही अहसास गायब हो जायेगा···

सहसा पैण्ट की जेब में एक वजन-सा महसूस किया उसने । उधर उसकी निगाह तुरन्त चली गई— जेब फूली हुई थी ! किसी जेब में कुछ भी लेकर नहीं आया था ददन । वह जेब, इसके बावजूद फूली हुई थी ! गोलाकार ! धातु-गेंद ! सनसनाती, खतरनाक, मौत की सवाहक, भयकर धातु-गेंद— अपने-आप आ—पहुँची थी ! ददन ने चाहा, वह जोर से चीखे । उछले । हँसे । खिलखिलाए । कुछ करे । कुछ भी करे । ज़ोर से करे । बहुत ज़ोर से । लेकिन उसने कुछ न किया—सिवा इसके कि वह धीर-गम्भीर कदमों से 'यरल' की दीर्घा में से निकल आया ।

वह नहीं जानता था कि धातु-गेंद उसकी जेब में किस पद्धति से पहुंचाई गई, लेकिन पहले से की जा चुकी व्यवस्था के अनुसार, उस पूरे दृश्य को टेलीविज़न के पर्दों पर, बगल के ही कमरे में बैठे, अनेक वैज्ञानिकों ने देखा होगा । वे वैज्ञानिक यदि चाहते तो दीर्घा में ही मौजूद रह सकते थे, ताकि जो भी हो, सब आमने-सामने दिखाई दे—लेकिन निदेशक की राय रही थी कि ऐसा करने में खतरा है । जो भी शक्ति गेंद भेजने वाली है, वह 'निरीक्षकों' को पहचान सकती है । यदि वह शक्ति छिडकर नाराज़ हो गई तो…

इसीलिए निरीक्षक वैज्ञानिकों ने स्वयं को बगल के कमरे में छिपा लिया था ।

ददन तेज़ी से घुसा उस कमरे में । ऐसा सन्नाटा कसा हुआ था वहाँ, जैसे कुर्सियों में बैठे सभी वैज्ञानिक केवल पुतले हों—बेजान पुतले ! ददन भी अन्दर जाते ही एकदम ठिठक गया । फिर उसने न केवल आँखें, बल्कि अपने सिर को भी घुमा कर, पूरे कमरे के एक-एक व्यक्ति के मनोभावों को देखना और समझना चाहा । सबका रंग उड़ा हुआ था और आँखें फैल गई थी ।

"क्या…क्या देखा आपने ?" ददन ने लगभग हकलाते हुए पूछा ।

"उस गेंद को…मेज़ पर रख दीजिए…" आगे की पंक्ति में बैठा निदेशक धीमे से बोला और अपनी कुर्सी छोड़कर उठने लगा ।

फिर अचानक सारे कमरे में उत्तेजित फुसफुसाहटें छलक पड़ीं । एक भी वैज्ञानिक बैठा न रह सका । सबने आगे बढ़ कर ददन को घेर लिया ।

"क्या देखा आपने ?" ददन ने दोहराया, "क्या सब दिखाई दिया ?"

"हाँ···मुझे लगता है कि किसी ने अपनी तीव्र विचार-शक्ति को पदार्थ में रूपान्तरित करके इस धातु गेंद को जन्म दिया है। उस तीव्र विचार-शक्ति का मालिक कौन है, यह अनुसन्धान का एक स्वतन्त्र विषय हो सकता है। फिलहाल हम मानकर चल सकते हैं कि स्वयं 'चरल' संगणक, इस चमत्कार का सबसे बड़ा एजेण्ट है। धातु-गेंद का एक निष्क्रिय नमूना हमारे पास था। अब सक्रिय नमूना भी आ गया। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है यह देखकर कि हम···श्री दत्त मेहता को···बधाई दे सकते हैं···"

लेकिन निदेशक के ये शब्द क्या खोखले नहीं थे? क्या सचमुच वह बात ऐसी थी कि बधाई दी जाए?

●●

मुरली की मानसिकता 'चरल' के गर्भ में पहुँच चुकी थी। मकड़ी जिस तरह बीच में बैठती और चारों तरफ उसका जाल फैला होता है, उसी तरह मुरली भाँति-भाँति के विद्युत-सन्देशों के जाल में फँसा बैठा था। 'चरल' की दासता काफी हद तक स्वीकार कर ली थी उसने। मुरली के तमाम क्षेत्रफल को 'चरल' भाँति-भाँति की समस्याओं से बींधता रहता। अकेला मुरली उन समस्याओं को हल नहीं कर सकता था। अकेला 'चरल' भी उन से नहीं निबट सकता था। दोनों अब एक-दूसरे के सहायक थे। 'चरल' की नींव में 'फालतू समस्याओं' का एक जबरदस्त विभाग था। अत्यन्त सक्षम होने के बावजूद 'चरल' जैसा संगणक भी कई समस्याओं को सुलझा नहीं पाता था —तब वे समस्याएँ अपने-आप 'फालतू' के विभाग में पहुँच कर दफन-सी हो जातीं। अब 'फालतू' विभाग में पहुँचने वाली समस्याओं की संख्या काफी घट गई थी। 'चरल' की खोज करने वाले मानवों ने समझा होगा कि मरम्मत-तन्त्र की उनकी दक्षता के कारण 'चरल' की दक्षता बढ़ गई है—जबकि स्वयं एक मानव ही रखा गया था 'चरल' में, कि जिसने 'चरल' की तकनीकी समस्याओं को अपने विवेक की घुट्टी पिलाना शुरू कर दिया था···

लेकिन पूर्ण दासता मुरली ने अभी तक स्वीकारी नहीं थी। बगावत के क्षण अक्सर आया करते। 'चरल' उन बगावतों पर अब काफी आसानी से विजय पा लेता, किन्तु पूर्ण दासता की स्थापना तो तभी हो सकेगी न कि जब

बगावत के क्षण कभी आए ही नही ? 'यरल' जानता था, वह समय अधिक दूर नही था...

मुरली को भी अनुमान लग चुका था कि पूर्ण दासता कितने पड़ोस में सरक आई है। मुरली की अकुलाहट की सीमा नही थी, लेकिन अब वह 'यरल' का विरोध करने से डरने लगा था। विरोध करते ही चमचमाते आदेशों का जो दाहक और वेधक इनाम मिलता था, उसे झेल-झेल कर मुरली काफी बुझ चुका था।

घिररर...क्लिक।

"तुमने बुलाया ?" 'यरल' ने पूछा।

'हाँ।" मुरली ने कहा, "क्या धातु-गेंद हवा मे प्रकट हो सकेगी ? क्रिररर... क्लिक।"

"हाँ... क्लिक...और इस बार तो उसकी क्षमता डबल होगी...खिडिक्।"

"क्योंकि मेरे विवेक की शक्ति भी उसके साथ सलग्न है ? कुडुक...कुडुक ...क्लिक।"

"हाँ...शिररर..."

"वह मेरा दोस्त है...ददन...क्लिक "

"वह मनुष्य का दोस्त था। खिडिक्। तुम डिजाइन हो। तुम सगणक हो। सगणक। सगणक। संगणक।"

विरोध, "आदमी। आदमी। आदमी।"

तुरन्त, "खामोश !"

विरोध, "खुड़-खुड-खुड-खुड़-खुड़..."

तुरन्त, "खामोश। खामोश। खामोश।"

जिज्ञासा, "क्या एक आदमी काफी नहीं है ? क्लिक क्रिररर "

डाट, "तुम्हारी हस्ती क्या है तुम जैसे कइयो का विवेक मुझे पचाना है। हिड़िक, हिडिक, पचाना। पचाना। पचाना। कुड़ुक "

"यह आदमखोरी है"—मुरली।

"खामोश !" 'यरल'।

दसों दिशाओं से मुरली के क्षेत्रफल मे दाहक विद्युत-आदेश रेंग आए। उन्होंने मुरली को सिकोड़ा, फैलाया, सिकोड़ा, फैलाया। भूना। बींधा। रेत डाला। पुनः जोड दिया। चीरा। रौंदा···जब तक कि मुरली बेहोश न हो गया।

मुरली जाग रहा था। सब याद आ रहा था उसे—आदमखोरी! ददन को भूल नही पाता वह···क्या ददन भी·?-?-?-? खिडिक··खिडक·· किरररररर·· नही। लेकिन क्या उपाय है? किरररररर··हुडुक—हुडुक· इस दौड का अन्त कहाँ है? ददन। फिर एक और ददन। एक और। फिर से एक और। कितने मनुष्य बलि चढ़ेंगे?

मुरली क्या करे? किररररर···

मुरली को क्या करना चाहिए? किररररर

मुरली क्या कर सकता है? किरररररर··

सर्वनाश!

क्या मुरली सर्वनाश कर सकता है? ढिडिक-ढिडिक···

'यरल' की इच्छा के विरुद्ध जा कर भी क्या मुरली सर्वनाश कर सकेगा? टिड़ि-टिड़ि-टिड़ि···खबरदार! क्या सोच रहे हो? तुम डिजाइन हो! —गुर्राया 'यरल'।

सिकुड़ता मुरली···किररर···सोचता मुरली···किररर···मत सोचो—आदेश! दाह! सुन्न पड़ता मुरली···

मुरली जाग रहा था। खुश था वह। बहुत खुश। एक नई क्षमता पैदा कर ली थी उसने—अपने विचारो को 'यरल' से छिपाने की क्षमता! ह, ह, ह! मुरली हँस सकता है—'यरल' जान जाए तो? लेकिन कैसे जान सकता है 'यरल'! ह, ह, ह! किररर···—

धातु-गेंद हवा मे अवतरित की जा चुकी है—सन्देश। किड़िक···

धातु-गेंद ददन की जेब मे घुस चुकी है—सन्देश। किड़िक···

धातु-गेंद अब मेज पर रखी है। मानवों का एक झुण्ड उसे घेरे हुए है···हुडुक·· 'फट!' मुरली ने सोचा, 'फट जा···

कोई असर नही।

पुन: प्रयाग । फट ! फट जा ! तेरे निर्माण में मेरा भी हाथ है । तेरी बढ़ी हुई शक्ति में मेरा भी अनुदान है । मान—मान मेरा आदेश । फट ! फट जा ! किररर···ख़ामोश ! क्या सोच रहे हो ? खबरदार ! तुम होते कौन हो पूछने वाले ? चुप ! नहीं होना चुप ! फिर विद्रोह ? हाँ । हाँ । हाँ । विड़िक···विडिग···मत सोचो । सोचूँगा नहीं । नहीं । नहीं । हाँ । अभी । इसी वक्त । गेंद— ओ गेंद !···मेरा प्रमाण तुझ तक पहुँचा कि नहीं ? पहुँचा पहुँचा । पहुँचा । तो देर कैसी ? फट ! ख़ामोश ! मैं कहता हूँ—फट जा ! ख़ामोश । फट जा ! फट जा !

●●

'····मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है यह देखकर कि हम·····श्री ददन मेहता को·····बधाई दे सकते हैं···

धड़ाम !

गेंद फट गई है ।

धड़ाम ! धड़ाम ! धड़ाम ! विस्फोटों का सिलसिला जारी हो गया है । गेंद के एक ही विस्फोट में आधे से ज्यादा 'यरल' की धज्जियाँ उड़ा दी हैं । गेंद के आस-पास जितने भी मानव थे, सब भाप बन चुके हैं । यदि संगणकों की धज्जियाँ उड़ें तो आगे वे ख़ुद-ब-ख़ुद फटने लगते हैं । 'यरल' धड़ाम-धड़ाम फूट रहा है···बार-बार···

किररर···पिररर···विड़िक···मैं—मुरली !···हुडुक···धन्यवाद, गेंद— कि तूने मेरा आदेश माना···'यरल' जैसे संगणकों पर मानव रोक कैसे लगाता ? क्या क़ानूनी रोक लगा देने से ही निर्माण रुक जाया करते हैं ? अन्त समय में आहा, मैं कितना साफ़-साफ़ सोच सकता हूँ—पुन: ! मेरा सारा क्षेत्रफल धू-धू कर रहा है । मेरी भी धज्जियाँ उड़ने वाली हैं । मेरे पास और उपाय भी क्या था—सिवा सर्वनाश के ? धातु-गेंद का विस्फोट—और मेरा अपना विस्फोट—इतना अधिक रेडियो-सक्रिय है कि अब सारी दुनिया पर मुर्दनी छा जाएगी । सब-कुछ नष्ट ! जो गिने-चुने लोग बचेंगे, क्या इस सर्वनाश से वे चेतेंगे नहीं । ? पुन: 'यरल' बनाने से वे हिचकेंगे नहीं ? पुन. 'यरल' क्या वे बना भी पाएंगे ? नहीं । नहीं हाँ । नहीं । क्रिररर···पिररर···हिड़क··· विड़िक धड़ाम ! !

—डन्कन लेमण्ट की एक कहानी से अनुप्रेरित ।

●● ●● ●●

इस हाथ ले, उस हाथ दे

अनजाने में ही विनोद ने स्वयं की तुलना रज्जन साहब से कर ली। रज्जन साहब उसे स्वयं से बिलकुल ही भिन्न प्रकार के व्यक्ति मालूम पड़े। उन्हें देखने मात्र से ऐसा लगता था कि यह व्यक्ति कभी कोई भूल नहीं करता होगा, कि हमेशा यह अपनी सुरक्षा का इन्तजाम पहले ही कर लेता होगा।

रज्जन साहब ने अपनी सुनहरी फाउण्टन-पेन को मेज पर रख दिया, फिर मोटे चश्मे के पीछे से विनोद को लगभग घूरते हुए पूछा, "कैसी लड़कियाँ पसन्द हैं आपको ?"

विनोद ने कतई ऐसे सवाल की आशा नहीं रखी थी। वह ज़रा सकपका गया, फिर बोला, "जी ····बात यह है 'मैं यहाँ अपनी, या अपने किसी भी परिचित की शादी के सिलसिले में नहीं आया हूँ। मैं तो···'और विनोद, अपना वाक्य अधूरा ही रहने देकर, रज्जन साहब की आँखों में गूढ़ सांकेतिकता के साथ देखने लगा।

विनोद के शब्दों को सुनकर रज्जन साहब को कोई आश्चर्य नहीं हुआ—यद्यपि आश्चर्य उन्हें होना चाहिए था। शान्त, ठण्डे स्वर में उन्होंने उत्तर दिया 'किन्तु यहाँ तो लोग केवल शादियों के सिलसिले में ही आते-जाते हैं। हमारे विज्ञापनों में आपने पढ़ा होगा कि कम्प्यूटरों की सहायता से हम योग्य वरों के लिए योग्य वधुओं की खोज कर देते हैं। लड़के को कैसी लड़की चाहिए, इस की सूचनाएँ हम एक कम्प्यूटर में डालते हैं और लड़की को कैसा लड़का चाहिए, इस की सूचनाएँ डाल दी जाती हैं दूसरे कम्प्यूटर में। दोनों कम्प्यूटर परस्पर सहयोगी हैं। वे युवतियों में योग्य वर के लिए योग्य वधू की खोज कर देते हैं। ज़माना बहुत आगे बढ़ चुका है।"

"जी हाँ, आपके विज्ञापनों में मैंने यह-सब पढ़ लिया है।" विनोद ने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा, "लेकिन मैं किसी और काम से आया

मुझे श्री बादल कपूर ने भेजा है। आप उन्हीं की सिफारिश के कारण आपसे अभी मिल रहा हूँ।"

विनोद को यह देखकर कुछ राहत-सी मिली कि उसके इन शब्दों का असर, रञ्जन साहब के चेहरे पर, साफ-साफ झलक आया। विनोद के शब्दों ने उन्हें निश्चय ही सावधान कर दिया था—बहुत सावधान। अपनी सभ्य कुर्सी की ओट में छिप कर वह, आँखों-ही-आँखों में जैसे विनोद के पूरे व्यक्तित्व को तौल लेना चाहते थे। विनोद को महसूस हुआ, जैसे उस कमरे में जो बड़े-बड़े कम्प्यूटर लगे हुए थे, ठीक वैसे ही कम्प्यूटर रञ्जन साहब के दिमाग के अन्दर भी लगे हुए थे, जो बड़ी तेजी से हिसाब लगा कर रञ्जन साहब को बता रहे थे कि विनोद कैसा आदमी है, कि विनोद पर किस हद तक विश्वास किया जाना चाहिए···

सहसा रञ्जन साहब कुर्सी छोड़ कर उठ पड़े। लम्बे डग भर कर वह दरवाजे के पास पहुँचे। दरवाजा बन्द करके उन्होंने भीतर से सिटकनी चढ़ा दी, फिर वापस आकर अपनी कुर्सी में बैठ गए। विनोद ने देखा कि वह मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। यह पहला अवसर था, जब वह मुस्करा रहे थे। "हूँ—" वह धीमे स्वर में बोले, "तो आपको बादल कपूर जी ने भेजा है।"

विनोद बोला, "जी हाँ.. और आप समझ ही गए होंगे कि मैं आपके कम्प्यूटरों की सेवा किसी शादी के सिलसिले में नहीं लेना चाहता। मैं यहाँ आया हूँ, 'इस हाथ ले' उस हाथ दे' विभाग की सेवाएँ लेने के लिए।"

"क्या श्री बादल कपूर ने आपको पक्का यक़ीन दिलाया है कि ऐसा कोई विभाग हम यहाँ बाक़ायदा चलाते हैं ?"

"जी हाँ।" विनोद का उत्तर था।

"क्या श्री बादल कपूर ने आपको यह भी बताया] कि उस विभाग की सेवाएं उन्हें सचमुच मिल चुकी हैं ?"

"जी हाँ, उन्होंने यह भी बताया।"

रञ्जन साहब का चश्मा उनकी नाक पर जरा आगे खिसक आया था। उन्होंने उसे खामोशी से वापस पीछे सरकाया। विनोद पर उनकी आँखें पुनः

ठहर गई। खामोशी विनोद ने तोड़ी, "बादल कपूर जी कह रहे थे कि पांच हजार रुपए नकद भी देने होंगे।"

"यदि आप बुरा न मानें, तो "रंजन साहब ने कहा, "क्या मैं एक बार भी बादल कपूर से फोन पर बात कर लूं ?"—और रंजन साहब का हाथ फ़ोन के रिसीवर तक पहुँच गया।

विनोद ने गमगीनी से सिर हिलाया, "आप उनसे बात नहीं कर सकेंगे।"

"क्यों?"

"क्योंकि वह इस दुनिया में नहीं हैं।" विनोद ने उत्तर दिया, "जिस दिन उन्होंने मुझे आपके बारे में सूचनाएँ दीं, उसके अगले ही दिन, दिल का दौरा पड़ने से, उनकी मृत्यु हो गई।"

"ओह!" रंजन साहब की बुदबुदाहट उस खामोश कमरे में सुनाई दी। विनोद समझ न पाया कि वह बुदबुदाहट उदासी की थी या तसल्ली की। इस विचित्र अहसास ने विनोद को थोड़ा चौंकाया और थोड़ा सहमा भी दिया। वह चुपचाप रंजन साहब को ताकता रह गया।

"बहरहाल।" रंजन साहब ने शुरू किया, "पहली बात तो यह है कि ग्राहक हमारे पास नहीं आया करते—हम स्वयं ग्राहकों के पास पहुँचते हैं। विभिन्न उपायों से हमें इसकी जानकारी मिल ही जाती है कि कौन हमारा ग्राहक बन सकता है। जो ग्राहक स्वयं हमारे पास आते हैं, उनका स्वागत करना हमें यों कहिए कि पसन्द नहीं है। लेकिन आपने स्वर्गीय बादल कपूर का जो हवाला दिया है, उससे लगता है कि आपसे बात की जा सकती है 'इस हाथ ले, उस हाथ दे' विभाग की रूपरेखा से बादल जी ने आपको परिचित करा ही दिया होगा ?"

"जी हाँ।" विनोद बोला। उसकी धड़कन ज़रा तेज़ होने लगी थी।

"फिर ? आप कहना क्या चाहते हैं ?" रंजन साहब ने एकदम सीधा सवाल किया।

"मैं चाहता हूँ कि आपका 'इस हाथ ले' उस हाथ दे' विभाग एक कत्ल करे।" विनोद ने जब यह कहा, उसकी आवाज़ थोड़ी कांप गई।

लेकिन रंजन साहब की आवाज़ में कोई कपकंपी नहीं थी, वह बोले, "हाँ, हाँ, ठीक है, हो जाएगा कत्ल—लेकिन कत्ल आखिर किस व्यक्ति का ?"

"ब्रह्मप्रकाश जैन का।"

रज्जन साहब ने अपनी भव्य मेज का दराज खोल कर, एक मुड़ा हुआ पीला फ़ार्म निकाला और उसे मेज पर फैलाते हुए पूछा, "क़त्ल का उद्देश्य?"

"व्यावसायिक होड़ और ईर्ष्या।" विनोद ने कहा, "यह ब्रह्मप्रकाश जैन, अभी थोड़े दिन पहले तक, मेरा भागीदार था। हम दोनों मिलकर एक 'एडवरटाइज़िंग एजेन्सी' चलाते थे— लेकिन अब वह मुझ से अलग हो गया है। उसने अपनी एक स्वतन्त्र एजेन्सी खोल ली है। मेरी एजेन्सी के कई महत्वपूर्ण रजिस्टर वह अपने साथ ले गया है, जिससे मेरी परेशानी की सीमा नहीं है। मेरे सबसे महत्वपूर्ण ग्राहकों को भी उसने अपनी ओर फोड़ लिया है। इतना ही नहीं—"

"ठहरिए, विनोद जी!" रज्जन साहब ने टोक दिया, "ये सारी बातें मुझे आमने-सामने बताने का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि इन्हें तो आपको एक अन्य फ़ार्म पर भरना होगा। मैं, दरअसल, आपसे कुछ और पूछना चाहता हूँ।"

"जी?"

"इस सारे लेन-देन में हमें मानवीय स्वभाव की कमजोरियों का भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि इस सौदे के अनुसार क़त्ल हो जाने के बाद आप भयंकर अपराध भावना से घिर जाएँ और उसी झोंक में पुलिस के सामने जाकर सारा राज़ खोल दें।"

"जी नहीं!" विनोद ने दर्प से कहा, "मेरी खाल बहुत मोटी है। मैं अपराध-भावना से नहीं घिर सकता। ऐसी किसी भी सम्भावना का सवाल ही नहीं उठता।"

"हूँ" रज्जन साहब ने गम्भीरता से सिर्फ़ इतना कहा और सिर हिलाया। पुनः एक खामोशी खिंच गई, जिसे अन्ततः रज्जन साहब ने तोड़ा, "पाँच हज़ार नक़द देने के अलावा आप हमें कुछ और भी देंगे—मेरा मतलब है, एक ख़ास तरह का सहयोग हमें आपसे चाहिए होगा। स्वर्गीय बादल कपूर ने शायद आप को बता ही दिया होगा कि"

"जी हाँ, मैं जानता हूँ कि पाँच हज़ार की फ़ीस नक़द देने के अलावा,

मुझे किसी का कत्ल भी करना होगा···किसी ऐसे व्यक्ति का कत्ल, जिसे मैं पहचानता भी न होऊँ।" विनोद ने कहा।

"जी हाँ, क्योंकि जिस ब्रह्मप्रकाश जैन का कत्ल आप कराना चाहते हैं, उसका कत्ल भी किसी ऐसे व्यक्ति के हाथों करवाया जायेगा, जिसका ब्रह्मप्रकाश जैन से कतई कोई परिचय न हो।" रंजन साहब ने कहा, "हम यह सारा लेन-देन बहुत ही सुरक्षित ढंग से करते हैं। मान लीजिए कि हमारे द्वारा भेजा गया कातिल किसी गफलत में, पुलिस की गिरफ्त में आ गया—अव्वल तो वह गिरफ्त में आयेगा नहीं; हम तरीका ही ऐसा निकालते हैं कि वह कतई गिरफ्त में न आए—लेकिन एक मिनट को मान लीजिए कि वह गिरफ्तार हो जाता है। तब वह अपनी सफाई में पुलिस से कह सकता है कि भला मैं इस व्यक्ति का कत्ल क्यों करूँगा? मैंने तो इसे आज से पहले कभी देखा भी नहीं है, मैं इसे जरा भी नहीं पहचानता।"

"जी हाँ मैं आपका पाइन्ट शुरू से ही भाँप चुका हूँ।"

"तो, विनोद जी, हमारे 'इस हाथ ले, उस हाथ दे' विभाग की नींव यही है। आपके बताए हुए व्यक्ति का क़त्ल हम करेंगे। उसके एवज में, हमारे बताए हुए किसी व्यक्ति का कत्ल आप करेंगे।" रंजन साहब ने ठण्डी तटस्थता से कहा, "सबसे पहले तो आप···हमारे कुछ फार्म भरेंगे। उन फार्मों में आप स्वयं अपने बारे में सारी सूचनाएँ दर्ज करेंगे। फिर उस व्यक्ति के बारे में भी सब कुछ दर्ज करेंगे, जिसका कत्ल आप करवाना है। यह सब इस लिए जरूरी है कि जिस अनजान व्यक्ति को आप कत्ल करेंगे, उसका चुनाव होगा कम्प्यूटर द्वारा। कत्ल करने में आपको कम-से-कम समय लगे और दिक्कत भी कम-से-कम हो, इसके लिए बहुत जरूरी है कि कत्ल करने के लिए आपको कोई ऐसा व्यक्ति ही सौंपा जाय, जो आपकी आदतों, शक्ति, सूझ-बूझ तथा परवरिश इत्यादि के अनुसार, आपके हाथों कत्ल होने के लिए, अधिकतम योग्य व्यक्ति हो! इसी प्रकार, जिस व्यक्ति को आप कत्ल करवाना चाहते हैं, उसकी सारी क्षमताओं, कमजोरियों और आदतों इत्यादि की जानकारी हमें मिल जाने के बाद ही, उस व्यक्ति के लिए सर्वाधिक योग्य क़ातिल का चुनाव, हमारे कम्प्यूटरों द्वारा किया जा सकता है।"

मुझे किसी का कत्ल भी करना होगा···किसी ऐसे व्यक्ति का कत्ल, जिसे मैं पहचानता भी न होऊँ।" विनोद ने कहा।

"जी हाँ, क्योंकि जिस ब्रह्मप्रकाश जैन का कत्ल आप कराना चाहते हैं, उसका कत्ल भी किसी ऐसे व्यक्ति के हाथों करवाया जायेगा, जिसका ब्रह्मप्रकाश जैन से कतई कोई परिचय न हो।" रज्जन साहब ने कहा, "हम यह सारा लेन-देन बहुत ही सुरक्षित ढंग से करते हैं। मान लीजिए कि हमारे द्वारा भेजा गया कातिल किसी गफलत में, पुलिस की गिरफ्त में आ गया—अव्वल तो वह गिरफ्त में आयेगा नहीं; हम तरीका ही ऐसा निकालते हैं कि वह कतई गिरफ्त में न आए—लेकिन एक मिनट को मान लीजिए कि वह गिरफ्तार हो जाता है। तब वह अपनी सफाई में पुलिस से कह सकता है कि भला मैं इस व्यक्ति का कत्ल क्यों करूँगा? मैंने तो इसे आज से पहले कभी देखा भी नहीं है, मैं इसे जरा भी नहीं पहचानता।"

"जी हाँ मैं आपका पाइन्ट शुरू से ही भाँप चुका हूँ।"

"तो, विनोद जी, हमारे 'इस हाथ ले, उस हाथ दे' विभाग की नींव यही है। आपके बताए हुए व्यक्ति का कत्ल हम करेंगे। उसके एवज में, हमारे बताए हुए किसी व्यक्ति का कत्ल आप करेंगे।" रज्जन साहब ने ठण्डी तटस्थता से कहा, "सबसे पहले तो आप···हमारे कुछ फार्म भरेंगे। उन फार्मों में आप स्वयं अपने बारे में सारी सूचनाएँ दर्ज करेंगे। फिर उस व्यक्ति के बारे में भी सब कुछ दर्ज करेंगे, जिसका कत्ल आपको करवाना है। यह सब इस लिए जरूरी है कि जिस अनजान व्यक्ति को आप कत्ल करेंगे, उसका चुनाव होगा कम्प्यूटर द्वारा। कत्ल करने में आपको कम-से-कम समय लगे और दिक्कत भी कम-से-कम हो, इसके लिए बहुत जरूरी है कि कत्ल करने के लिए आपको कोई ऐसा व्यक्ति ही सौंपा जाय, जो आपकी आदतों, शक्ति, सूझ-बूझ तथा परवरिश इत्यादि के अनुसार, आपके हाथों कत्ल होने के लिए, अधिकतम योग्य व्यक्ति हो! इसी प्रकार, जिस व्यक्ति को आप कत्ल करवाना चाहते हैं, उसकी सारी क्षमताओं, कमजोरियों और आदतों इत्यादि की जानकारी हमें मिल जाने के बाद ही, उस व्यक्ति के लिए सर्वाधिक योग्य कातिल का चुनाव, हमारे कम्प्यूटरों द्वारा किया जा सकता है।"

"ग्राश्चर्यजनक !" विनोद बोल उठा, "ग्रापकी व्यवस्था सचमुच ग्राश्चर्य-जनक है ।"

"जो फ़ार्म ग्रापको भरने के लिए दिए जायेंगे, उनकी रूप-रेखा ऐसी है कि मान लीजिए, कभी पुलिस यहाँ छापा मारती है। तब हमारे फार्मों की जाँच करने पर यही लगेगा कि हम सिर्फ वैवाहिक व्यवस्था करने का ब्यौरा ही चलाते हैं ग्रौर केवल इसी सिलसिले मे हमने विभिन्न व्यक्तियो की पूरी-पूरी जान-कारियाँ इकट्ठी की हुई हैं।"

"ग्रोह ! ग्रद्‌भुत !" विनोद फिर बोल उठा, "लेकिन एक बात बताइये।"

"पूछिये।"

"मैं कोई पेशेवर कातिल तो हूँ नही।" विनोद ने कहा, "सुरक्षित रूप से क़त्ल मैं कर कैसे सकूँगा ? क्या मुझसे कोई गड़बडी नही हो जायेगी ?"

"क़त्ल कब, कहाँ ग्रौर कैसे करना है, इसकी रूपरेखा हमारे कम्प्यूटर तैयार कर देंगे। आपके जो भी दैनिक कार्यक्रम हमेशा होते हैं, उनका अध्ययन करने के बाद कम्प्यूटरों द्वारा कोई-न-कोई ऐसा तरीका सोच ही लिया जाता है, जिससे ग्रापके हाथो जो भी क़त्ल हो, वह केवल एक दुर्घटना ही मालूम पड़े। क़त्ल करने के लिये ग्रापको ग्रपने दैनिक कार्यक्रम मे नहीं के ही बराबर परिवर्तन करना होगा—या, हो सकता है कि ग्रापको जरा भी परिवर्तन न करना पड़े ! चलते-चलाते केवल एक नन्हीं-सी हरकत ग्राप करेंगे—ग्रौर क़त्ल हो जायेगा !"

"ग्रोह !"

"मैं यह भी बता दूँ कि हम ग्रपने ग्राहकों की कोई भी बात कभी खुलने नहीं देते। गोपनीयता की पूरी रक्षा की जाती है हमारे यहाँ।" रमन साहब ने कहा, "ज्यों ही क़त्ल करने ग्रौर करवाने का अभियान समाप्त होता है, भरे गए फार्मों समेत, सम्बन्धित सारी गवाहियों को नष्ट कर दिया जाता है। एक भी सुराग ऐसा नहीं छूटता, जो नष्ट न हो।"

"मेरा ख्याल है कि पाँच हजार मुझे एडवान्स में दे देना चाहिए।"

"जी हाँ।"

विनोद ने पाँच हज़ार के नोट देते हुए गहरा रोमांच अनुभव किया। बोले बिना वह न रह सका, "एक क़त्ल के लिए पाँच हज़ार की रक़म कोई ज़्यादा नहीं कही जा सकती। सचमुच आप एक अत्यन्त उपयोगी ब्यूरो चलाते हैं।"

"धन्यवाद!" रञ्जन साहब ने नोट रख लेते हुए कहा, "अब मैं आपको सारे फ़ार्म दे देता हूँ। एक-एक ख़ाने को सोच-सोच कर भरियेगा।"

फ़ार्म इतने अधिक थे और प्रत्येक फ़ार्म में ख़ानों की संख्या भी इतनी बड़ी थी कि उन्हें ठीक-ठीक भर कर देने में विनोद को लगभग दो घण्टों का *समय लग गया! सारी जानकारियाँ इतनी सूक्ष्मता से माँगी गई थीं कि उस* सूक्ष्मता ने जहाँ एक ओर विनोद को चकित किया, वहीं दूसरी ओर आश्वस्त भी किया—कि अपने 'शुभ कार्य' के लिए जिस संस्था की सेवाएँ वह ले रहा था, वह कोई बोगस संस्था नहीं थी।

रञ्जन साहब ने भरे गए सभी फ़ार्मों की जाँच सावधानीपूर्वक कर ली। "ख़ूब!" वह प्रसन्नता से बोले।

"एक जिज्ञासा है मुझे।" विनोद ने कहा, "ब्रह्मप्रकाश जैन का क़त्ल चाहे जिसके भी हाथों हो, लेकिन क्या उस क़त्ल का शक मुझ पर नहीं किया जाएगा? क्या पुलिस मुझसे कुछ नहीं पूछेगी? भले ही मेरे ख़िलाफ़ कुछ भी साबित न किया जा सके, लेकिन पुलिस आकर मुझसे कुछ पूछे, केवल इतने से ही मेरी इज़्ज़त पर दाग़ लग जाएगा···"

"हम ऐसा इन्तज़ाम करेंगे कि पुलिस आपसे कुछ पूछने भी नहीं आएगी" रञ्जन साहब मुस्करा उठे, "हमारे कम्प्यूटर कम चतुर नहीं हैं। शायद आप नहीं जानते कि हमारी इस संस्था की शाखाएँ न केवल सारे देश में, बल्कि सारे विश्व में फैली हुई हैं। अभी जो फ़ार्म आपने भर कर दिए हैं, उन से मैंने जाना कि ब्रह्मप्रकाश जैन को अक्सर यात्राएँ करनी पड़ती हैं। हम उस का क़त्ल किसी अन्य शहर या विदेश में भी करवा सकते हैं। आप पर शक की छाया भी नहीं आ सकेगी, क्योंकि क़त्ल के समय आप इसी शहर में रहेंगे, न कि किसी अन्य शहर में, या विदेश में!"

रञ्जन साहब की बात ने विनोद को रोमांचित कर दिया था। विनोद का

यही अनुमान था कि यह विचित्र संस्था केवल इस शहर में ही
बिछाए हुए है, किन्तु रज्जन साहब ने अभी जो बताया, उसके
यह संस्था न केवल अखिल-भारतीय, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय है ! संस
की विराटता ने विनोद को रोमांचित तो किया, लेकिन साथ-साथ
भी नहीं भर दिया ? न जाने क्यों, उसे वाकई डर-सा लग रहा ।
ने कन्धे हिलाए । वह उस डर को झटक देना चाहता था । उसने
झटक दिया ।

"अब आप चैन से अपने घर जा सकते हैं ।" रज्जन साह
कहा, "आपको किस का कत्ल करना है, कब और कहाँ करना
सूचनाएँ, यथावसर, मैं स्वयं दे दूँगा ।"

"फ़ोन मिलते ही मैं वार्ता के लिए हाज़िर हो जाऊँगा ।" औ
मुस्करा कर रज्जन साहब से हाथ मिलाया ।

"रही बात आपके दुश्मन इस ब्रह्मप्रकाश जैन की ।" रज्जन
"ज्यों ही उसका सफ़ाया होगा, आपको खबर मिल जाएगी ।"

विनोद को विदा करने के लिए रज्जन साहब दरवाज़े तक आए

हफ़्ते भर बाद ही रज्जन साहब ने विनोद को अपने कार्यालय
भेजा । बन्द कमरे की खामोशी में वे निहायत ठन्डी फुसफुसाहटों में
रहे । "आपको जिनका कत्ल करना है, उसका नाम है प्रशान्त ।
रज्जन साहब ने कहा, "लिंक रोड पर 'आकाश-महल' नाम की जो
उसके सामने से आप रोज़ गुज़रते हैं न ?"

"जी हाँ ।" विनोद बोला, "ऑफिस और घर के बीच आते-जाते व
हमेशा मेरे रास्ते में पड़ती है ।"

"कभी उस इमारत के भीतर गए हैं ?"

"हाँ कई बार ।" विनोद ने उत्तर दिया, "वह इमारत रिहायशी
वहाँ केवल दफ़्तर हैं— बड़ी-बड़ी कम्पनियों के दफ़्तर । उन कम्प
विज्ञापन-कार्यक्रमों के ठेके लेने के लिए मुझे अनेक बार 'आकाश-
जाना पड़ा है ।"

"हमारे कम्प्यूटरों ने भी यही अन्दाज़ा लगाया था ।" रज्जन स

होंठों पर एक कुटिल मुस्कान छा आई थी, "बहरहाल'''यह जो प्रशान्त तिवारी है—यह रहा उसका फोटो। उसे पहचान लीजिए।"

विनोद देखता रह गया उस व्यक्ति के फोटो को, जो अब थोड़े ही समय का मेहमान था इस धरती पर! विनोद को लगा, वह सपना देख रहा है।

लेकिन वह सपना नहीं था। जो हो रहा था, सब योजनानुसार ही हो रहा था। जो भी हो रहा था, सब सुनियोजित था।

"पहचान लिया।" विनोद बुदबुदाया।

"यह प्रशान्त तिवारी एक व्यापारी है। व्यापार उसका बहुत बड़ा तो नहीं है, लेकिन उसे अभावों का सामना प्रायः नहीं करना पड़ता। जो भी है, इस व्यक्ति का क़त्ल आपको करना है।"

"किस तरह?"

"प्रशान्त तिवारी का आफिस 'आकाश-महल' में ही है।" रञ्जन साहब ने बताना शुरू किया, "शाम के छह बजे उसके सब सहयोगी आफिस की छुट्टी कर जाते हैं। सबके जाने के बाद भी वह आफिस में ठहरा रहता है। आफिस में उसके कमरे के भीतर एक और नन्हा-सा कमरा है। वह केवल पाँच फीट लम्बा और पाँच फीट चौड़ा है। दरअसल वह एक स्टोर-रूम ही है, जिसे प्रशान्त तिवारी ने किसी तिजोरी जैसा रूप दे दिया है।"

"तिजोरी जैसा रूप?" विनोद ने आँखें झपकाईं।

"जी हाँ।" रञ्जन साहब सिगरेट सुलगाते हुए बोले, "प्रशान्त तिवारी वहमी मिज़ाज का आदमी है। आग की दुर्घटनाओं के प्रति वह शुरू से ही वहमी रहा है। इसी लिए, आफिस की जो फाइलें वग़ैरह बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं, उन्हें वह, घर जाने से पहले, उस नन्हे-से स्टोर-रूम में बन्द कर देता है; जो कि अग्नि-रोधक है। ध्यान से सुनिए—वह स्टोर-रूम लोहे की किसी मज़बूत तिजोरी जैसा ही है। उसका भारी-भरकम लोहे का दरवाज़ा बहुत ज़ोर लगाने पर ही खुलता या बन्द होता है। अन्दर लोहे के रैक लगे हुए हैं जिन पर महत्त्वपूर्ण काग़ज़ात प्रशान्त तिवारी द्वारा रख दिये जाते हैं। यह छोटा कमरा एकदम एयर-टाइट है—हवा के आने या जाने का कोई रास्ता उसमें नहीं है। यदि लोहे का दरवाज़ा बन्द कर दिया जाए, तो भीतर की आवाज़

...[illegible] बड़ी खिड़की और न बाहर की कोई आवाज़ ही भीतर जा सकती।
...[illegible] रहे हैं न ?"

"जी हाँ।"

"शाम के छह बजे, जब सारे कर्मचारी चले जाते हैं, प्रशान्त तिवारी इसी स्टोर-रूम का सारा [illegible] भीतर जा बैठता है। दरवाज़ा खुला रहता है और भीतर प्रशान्त तिवारी [illegible] को आख़िरी बार चेक करता है।"

"चेक स्टोर-रूम के भीतर ही करता है ?" किशोर ने पूछा।

"हाँ।" राजन साहब ने बताया, "सब-कुछ चेक करने के बाद वह रोज़ [illegible] है। लगभग [illegible] तक वह स्टोर-रूम में ही बना रहता है— इस दौरान [illegible] का दरवाज़ा बराबर खुला रहता है, [illegible] रहे। अब, जैसा कि आपके [illegible] आफ़िस से छह बजे उठ जाते हैं और सीधे घर की तरफ़ रवाना होते हैं।"

"जी हाँ।"

"सो, 'आकाश-महल' के सामने से आप ठीक छह के लगभग गुज़रते हैं।"

"जी हाँ।"

"उस वक़्त प्रशान्त तिवारी अपने आफ़िस में अकेला होता है—आफ़िस के उसी स्टोर-रूम में अकेला।"

"जी।"

"'आकाश-महल' के कई आफ़िस साढ़े छह या सात, अथवा साढ़े सात बजे तक खुले रहते हैं। घर लौटते समय आपको करना सिर्फ़ इतना है कि अपनी कार 'आकाश-महल' के सामने रोकिए, नीचे उतरिए, और 'आकाश-महल' में घुस जाइए। बहाना यह रहेगा कि आपको फलां आफ़िस में फलां साहब से मिलना है। ठीक ?"

"ठीक।"

"लिफ़्ट के ज़रिए आप सीधे पहुँचिए चौथी मंज़िल पर, जिसके कमरा नम्बर २१२ में प्रशान्त तिवारी का आफ़िस है। इस कमरे का बाहरी दरवाज़ा

दरवाज़े को भीतर से खींच कर खोला न जा सके।"

गुलहर रञ्जन साहब मुस्कराए, "विनोद जी! मुझे खुशी है कि आपका दिमाग़ तेज़ी से दौड़ने लगा है, किन्तु अभी जो आपने आशंका सामने रखी, वह निर्मूल है।"

"किस तरह?"

"वह भारी-भरकम दरवाज़ा भीतर से खींचकर खोला ही नहीं जा सकता। कारण— भीतर कोई हैण्डिल है ही नहीं! उसमें सिर्फ एक हैण्डिल है, जो बाहर लगा हुआ है और जिसे ज़ोर से खींच कर आप दरवाज़े को बन्द करेंगे। अन्दर कैद प्रशान्त तिवारी दरवाज़े को केवल नोच कर और सहला कर रह जाएगा। वह चीखेगा, चिल्लायेगा—किन्तु उसकी आवाज़ बाहर आएगी ही नहीं। चाबी घुमाने की ज़रूरत क्या है आपको? मत घुमाइएगा, ताला खुला ही रहने दीजिएगा। ताला बन्द करना अनावश्यक है। मैं कई बार दोहरा चुका हूँ कि दरवाज़ा भारी-भरकम है। भीतर चूँकि कोई हैण्डिल नहीं है, प्रशान्त तिवारी उसे भीतर से खींच ही नहीं सकेगा—फिर दरवाज़ा खुलेगा किस तरह? बाहर का हैण्डिल खींच कर जब आप दरवाज़े को बन्द करेंगे, तब हैण्डिल खींच कर आप की उंगलियों का कोई निशान नहीं छूटेगा—कारण? कारण यह कि आप दस्ताने पहने होंगे। ऊनी दस्ताने! कोई आपसे पूछेगा भी नहीं कि आपने दस्ताने क्यों पहने है। ये ठंड के दिन हैं। इस शहर में इन दिनों, ऊनी दस्ताने पहनने वालों की संख्या हजारों में होती है।"

"मान लीजिए, प्रशान्त तिवारी के आफ़िस में जिस क्षण मैं घुसूं, उसी क्षण, किसी कार्यवश, प्रशान्त तिवारी अपने स्टोर-रूम से बाहर निकल आये और मुझे देख ले—फिर?"

"फिर क्या! फौरन अजनबी बनकर पूछिए कि फलाँ-फलाँ आफ़िस किस नम्बर के कमरे में है। दिखावा करिए कि आप ग़लती से किसी और ही आफ़िस में चले आये हैं।"

"याने" यदि ऐसा हुआ तो···"

"तो उस दिन क़त्ल नहीं करना है आपको। इस योजना के असफल होने पर, कम्प्यूटरों द्वारा कोई और उपाय सोचा जाएगा।"

"पुलिस या जनता इस घटना को किस रूप में लेगी ?" विनोद ने पूछा, हालांकि पूछने की कोई ज़रूरत नहीं थी। ऐसा तो, ख़ैर, नहीं ही माना जाएगा कि दरवाज़ा अपने-आप बन्द हो गया, क्योंकि वह ख़ासा भारी-भरकम है, लेकिन सब कहेंगे यही कि कमरा नन्हा-सा होने के कारण, भीतर प्रशान्त तिवारी जब किसी कार्यवश इधर-से-उधर घूमा होगा, तब, उसी के शरीर का धक्का लग जाने से, दरवाज़ा बन्द हो गया होगा। उतना भारी दरवाज़ा भी शरीर के धक्के से बन्द कैसे हो गया, यह सबके लिए आश्चर्य का विषय रहेगा, लेकिन ऐसा शक किसी के भी मन में नहीं आएगा कि प्रशान्त तिवारी का क़त्ल किया गया है। यदि क़त्ल ही किया गया होता तो क़ातिल ने चाबी घुमाकर दरवाज़े को बन्द क्यों न कर दिया होता ? लेकिन चाबी तो घुमाई ही नहीं गई थी। ताला खुला पड़ा था। सिर्फ़ दरवाज़ा बन्द हुआ था, जो भीतरी हैंडिल के अभाव में, भीतर से खींचकर खोला नहीं जा सका और···

और यदि मान लें कि क़त्ल किए जाने का शक पुलिस को हो ही जाए, तो भी—एकाएक ऐसा शक कैसे किया जा सकेगा कि क़ातिल का नाम विनोद है ? विनोद तो प्रशान्त तिवारी को पहचानता भी नहीं। वह क़त्ल क्यों करेगा ?

सारी बात कितनी सुरक्षित थी ! विनोद के भीतर आत्म-विश्वास का सागर लहरा उठा।

किन्तु वह सारा विश्वास उस दिन पिघलता-सा अनुभव हुआ, जिस शनिवार को शाम उसे क़त्ल करना था। अपने हाथों की कपकपी वह रोक नहीं पा रहा था। उस कपकपी ने उसे दस्ताने पहनने की याद दिला दी। उसने दस्ताने पहन लिए, किन्तु कपकपी न रुकी। कपकपी को छिपाने के लिए विनोद ने दोनों हाथ अपनी जेबों में डाल लिए। 'आकाश-महल' की लिफ़्ट ऊपर जा रही थी और लिफ़्ट में वह अकेला खड़ा था।

चौथी मंज़िल आने पर लिफ़्ट का आटोमेटिक दरवाज़ा अपने-आप खुल गया। विनोद बाहर निकला। अब वह सूने गलियारे में आगे बढ़ रहा था। पूरे गलियारे में, बीचोबीच, एक लम्बी दरी बिछी हुई थी। विनोद दरी पर ही चल रहा था, ताकि जूतों की आवाज़ न हो। अधिकांश आफ़िस बन्द हो चुके थे,

सूने गलियारे में।

बाहर से उसने कमरा नम्बर २१२ के दरवाजे को उढका कर पुनः बन्द कर दिया।

फिर वह लिफ्ट की ओर कदम बढ़ाने लगा। गलियारे में जो सूनापन छाया हुआ था, उसका एक लाभ यह था कि विनोद पर किसी की निगाह पड़ने वाली नहीं थी, किन्तु दूसरी ओर एक नुकसान भी यह था कि अगर किसी की निगाह पड गई, तो उसे विनोद का चेहरा याद रह जाएगा···विनोद ने अपने कदम तेज़ कर लिए।

लिफ्ट को चौथी मंजिल पर बुलाने की जरूरत नहीं थी। लिफ्ट चौथी मंजिल पर ही खड़ी थी। विनोद ने ही तो उसे चौथी मंजिल पर अभी-अभी ला खड़ा किया था। ज्यों ही विनोद ने रजिस्ट्रेशन बटन दबाया, लिफ्ट का आटोमेटिक दरवाज़ा खुल गया। भीतर घुसकर विनोद ने ग्राउण्ड-फ्लोर का बटन दबा दिया। आटोमेटिक दरवाज़ा बन्द हुआ और फिर लिफ्ट नीचे उतरने लगी। ग्राउण्ड फ्लोर आते ही दरवाज़ा फिर अपने-आप खुल गया। विनोद लिफ्ट से बाहर निकला—और वह 'आकाश-महल' इमारत से ही बाहर निकल आया।

कार में बैठकर वह अपने घर की ओर चल दिया।

मंगलवार की सुबह के अनेक अखबारों में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि किस प्रकार प्रशान्त तिवारी नामक एक व्यापारी अपने आधुनिक दफ्तर के स्टोर-रूम में दुर्घटनावश बन्द हो जाने के कारण, दम घुट जाने से मारा गया। सोमवार को दफ्तर के कर्मचारियों ने उसकी लाश बरामद की थी।

विनोद ने एक गहरी साँस ली। उसे केवल एक बात का दुख था—कि प्रशान्त तिवारी को तड़प-तड़प कर मरना पड़ा। 'मुझे आशा रखनी चाहिए कि शायद ब्रह्मप्रकाश जैन को इतना नहीं तड़पना पड़ेगा।' विनोद ने सोचा।

विनोद के पास अब कोई काम नहीं था, सिवाय इसके कि अपनी 'एडवरटाइजिंग एजेन्सी' में व्यस्तता का दिखावा करता हुआ, ब्रह्मप्रकाश जैन की मौत का इन्तजार करे।

और विनोद को विशेष लम्बा इन्तज़ार नहीं करना पड़ा। आशा के अनु-

रूप ही, ब्रह्मप्रकाश जैन की मौत पीड़ाजनक नहीं रही थी। विनोद ने अनुमान लगाया कि ब्रह्मप्रकाश जैन को मरने में मुश्किल से दस सैकण्ड लगे होंगे…

ब्रह्मप्रकाश ने अपना नया आफिस कनाट-प्लेस की एक बहु-मंजिली इमारत में लिया था। तेरहवीं मंजिल पर था उसका आफिस। इमारत की एक लिफ्ट खराब हो गई थी। आनन्दस्वरूप नामक एक इन्जीनियर, अपने साथियों समेत, उसे ठीक कर रहा था। ब्रह्मप्रकाश को उसने लिफ्ट की ओर बढ़ते देखा। लिफ्ट के बाहर बोर्ड लगा हुआ था—"इस्तेमाल न करें, खराब है।' उस वक्त आनन्दस्वरूप अपने साथियों समेत, दूर के एक कोने में, चाय पीता हुआ खड़ा था। सबने देखा कि ब्रह्मप्रकाश ने लिफ्ट का रजिस्ट्रेशन बटन दबाया। सबने यही समझा कि कोई अफसर यूँ ही लिफ्ट की जाँच कर रहा है। आनन्दस्वरूप ने सोचा भी नहीं था कि वह अफसर लिफ्ट के भीतर घुस जायेगा। रजिस्ट्रेशन बटन दबाने के साथ लिफ्ट का दरवाजा खुल गया और ब्रह्मप्रकाश ने लिफ्ट में बाकायदा दाखिला ले लिया। इसके बाद एक अजीब-सी आवाज सुनाई दी… लिफ्ट एकदम नीचे चली गई थी। ब्रह्मप्रकाश को अपने भीतर लेकर लिफ्ट तेरहवीं मंजिल से फिसल कर एकदम नीचे सरक गई। ग्राउण्ड-फ्लोर पर लिफ्ट के टकराने का जोर का धमाका हुआ…

ब्रह्मप्रकाश की लाश जब लिफ्ट में से निकाली गई, तब वह क्षत-विक्षत हो चुकी थी।

लिफ्ट के बाहर जब 'खराब है' का बोर्ड लगा ही हुआ था, तब ब्रह्मप्रकाश ने लिफ्ट में कदम रख कैसे दिए—इस पर सबने आश्चर्य व्यक्त किया था—घोर आश्चर्य।

लेकिन विनोद को कोई आश्चर्य नहीं हुआ था। वह ब्रह्मप्रकाश के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित था। ब्रह्मप्रकाश जैन उन लोगों में से था, जो दिन में भी सपने देखते रहते हैं। ब्रह्मप्रकाश के दिमाग में हर वक्त कोई-न-कोई योजना पकती ही रहती। चाहे वह सड़क पार कर रहा हो, नहा रहा हो, भोजन कर रहा हो या पार्क में घूम रहा हो, हमेशा उसका मन भाँति-भाँति के विचारों में खोया रहता। ब्रह्मप्रकाश विनोद से थोड़े दिन पहले ही अलग हुआ था। जाहिर था कि अपनी नई संस्था को जमाने के लिए वह क्षण-प्रति-क्षण, मन-

ही-मन, योजनाएँ बना और बिगाड़ रहा होगा। उसी उधेड़बुन में वह लिफ्ट के पास चला आया और उसे याद न रहा कि लिफ्ट खराब है। न उसने 'खराब है' के बोर्ड पर ही ध्यान दिया। यन्त्रवत् उसने लिफ्ट का रजिस्ट्रेशन बटन दबाया और ज्यों ही लिफ्ट का दरवाज़ा खुला, उसने यन्त्रवत् ही भीतर क़दम रख दिये। अगले ही क्षण लिफ्ट उसके लिए मौत का कुआँ बन चुकी थी···

इस दुर्घटना के चश्मदीद गवाह एक नहीं, अनेक थे। विनोद से पूछताछ करने के लिए भी पुलिस आती, इसका कोई सवाल ही नहीं था।

दो सप्ताह बीत गए। विनोद अपनी 'एडवरटाइज़िंग एजेन्सी' को सम्भालने में जुटा रहा। ब्रह्मप्रकाश जैन की मौत के लिए उसने जो पाँच हज़ार खर्च किए थे, उससे अनेक गुना लाभ विनोद को ब्रह्मप्रकाश की मौत के कारण अब तक हो चुका था। विनोद खुश था। हमेशा का काँटा जो निकल गया था।

दो-दो हत्याएँ! प्रशान्त तिवारी की और ब्रह्मप्रकाश जैन की। कितनी सरल हत्याएँ! कितनी सुरक्षित हत्याएँ! इसी लिए तो वे हत्याएँ असम्भव-सी लग रही थीं—लेकिन वे सम्भव थी। वे सम्भव हुई थी। रात को विनोद देर-देर तक जागता रह जाता। हत्याओं की सरलता ने उसे भौंचक-सा कर दिया था। उसके संस्कार ऐसे थे ही नहीं कि हत्याओं को उतने सरल रूप में वह देख या स्वीकार सके। उसे अपने अंग-अंग पर एक अजीब-सा भार महसूस होता···नहीं, वह डर नहीं रहा होता था, लेकिन न जाने क्यों, उसे अटपटा-सा लगता रहता···जैसे कि कोई अदृश्य शिकंजा उसके चारों ओर कसा जा रहा हो और वह मजबूर हो— बिल्कुल मजबूर!

लेकिन कुछ दिनों बाद अदृश्य शिकंजे का अहसास विनोद के मन से निकल गया। ब्रह्मप्रकाश जैन की मौत को उसने उसी सहजता से ग्रहण कर लिया, जिस सहजता से वह अपने व्यवसाय में मिली किसी भी जगमगाती सफलता को ग्रहण करता।

उस दिन···अख़बारों में एक नन्हा-सा समाचार प्रकाशित हुआ। विनोद की निगाह शायद उस समाचार पर पड़ती ही नहीं—यह केवल एक संयोग

नहीं की। "मान लीजिए, मैं पुलिस को बुलाता हूँ!" विनोद चीख उठा, लेकिन रज्जन साहब ने कहा, "शौक से! बड़े शौक से!"

जो ठण्डक रज्जन साहब के स्वर में थी, उसने विनोद के क्रोध को एका-एक गायब कर दिया। रज्जन साहब का कालर उसने छोड़ दिया। वह समझ चुका था कि पुलिस को बुलाना उसके लिए सम्भव नहीं है। यदि उसने ऐसा किया तो पुलिस उसे भी गिरफ्तार करेगी—क्योंकि सम्पूर्ण गवाही देते समय उसे यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उसने प्रशान्त तिवारी का खून किया है।

विनोद ने टाइपिस्ट युवती कुमारी कमलिनी पर झेंप-भरी निगाह। डाली टाइप-राइटर पर कमलिनी के हाथ रुक चुके थे। उसकी आँखें और मुँह, दोनों आश्चर्य से खुले हुए थे। वह अपनी कुर्सी में ही बैठी हुई थी और कमर मोड़ कर पीछे देख रही थी।

"लीजिए; पुलिस को आप हमारे ही फ़ोन से बुला सकते हैं!" रज्जन साहब ने फ़ोन विनोद की तरफ बढ़ाते हुए कहा।

विनोद फ़ोन को छू भी न सका। किसी तरह वह पुनः बुदबुदाया, "प्लीज''' मुझसे मुँह माँगा दाम ले लीजिए, लेकिन''' प्लीज'''"

रज्जन साहब ने कहा कुछ नहीं। सिर्फ उन्होंने 'नहीं' में सिर हिला दिया वह 'नहीं' फाइनल थी—सचमुच फाइनल!

चकित और हतप्रभ विनोद फिर वहाँ ठहर न सका। तेजी से वह बाहर निकल आया। जब वह अपने घर पहुँचा, तब भी उस की चकित और भौंचक मनस्थिति ज्यों-की-त्यों थी। वह आ रे सोफ़े पर पत्थर की तरह गिरा। सोफ़े के स्प्रिंग चरमरा उठे। रज्जन साहब ने अभी जैसा व्यवहार किया था, उससे विनोद का शक और भी मजबूत हो गया था। अब वह पूरी तरह समझ चुका था कि 'इस हाथ ले, उस हाथ दे' विभाग का कार्य किस तरह सम्पन्न होता था। स्वयं रज्जन साहब ने ही तो कहा था उस दिन कि 'हर तरह की गवाही' को नष्ट कर दिया जाता है— एक भी सुराग छोड़ा नहीं जाता! उन शब्दों का अर्थ विनोद की समझ में उस दिन नहीं आया था, किन्तु अब आ गया था। '... हाथ ले, उस हाथ दे' का भेद कोई व्यक्ति किसी अन्य को बताए, इससे

पहले ही उसका खात्मा कर दिया जाता—निहायत सफ़ाई और ठण्डी क्रूरता के साथ। बादल कपूर ने विनोद को 'इस हाथ ले, उस हाथ दे' का भेद बताया था– और बादल कपूर की मौत दिल के दौरे में हो गई। क्या सचमुच वह दिल का दौरा ही था ?'इस हाथ ले, उस हाथ दे' विभाग को जब पांच हज़ार रुपयों की राशि मिल जाती और जब 'ग्राहक' बताए गए व्यक्ति का क़त्ल कर चुकता, तब—स्वयं 'ग्राहक' को ही 'एक शिकार' के रूप में नोट कर लिया जाता ! फिर उस 'ग्राहक' को किसी अन्य 'ग्राहक' के हाथों मरवा दिया जाता ! यही तो था वह तरीका कि कैसे 'एक भी सुराग नहीं छोड़ा जाता था !'

ब्रजप्रकाश जैन की मौत लिफ्ट-दुर्घटना में हुई। क्या उस दुर्घटना में इंजीनियर आनन्दस्वरूप का हाथ नहीं था ?

इसीलिए आनन्दस्वरूप को भी मौत के घाट उतर जाना पड़ा।

प्रशान्त तिवारी की मौत स्टोर-रूम का भारी-भरकम दरवाज़ा दुर्घटना-वश बन्द हो जाने के कारण हुई। क्या उस दुर्घटना में विनोद का हाथ नहीं था ?

था।

पूरी तरह था।

माने—अब विनोद को भी 'इस हाथ ले, उस हाथ दे' विभाग के कम्प्यूटरों द्वारा 'एक शिकार' के रूप में नोट कर लिया गया है। शीघ्र ही वे कम्प्यूटर विनोद के लिए एक सही 'क़ातिल' का चुनाव करेंगे…कैसी मौत मरेगा विनोद ? कुत्ते की या शेर की ? तड़प-तड़प कर या फ़ौरन ? चुटकियों में ?

अदृश्य शिकंजा विनोद के चारों ओर कसता जा रहा था। उस शिकंजे को विनोद ने अच्छी तरह पहचान भी लिया था, किन्तु छूटने का कोई उपाय उसे सूझ नहीं रहा था।

जिस तरह कोई तितली किसी कांच पर बार-बार टकराती है, किन्तु कांच के पार-पार नहीं निकल पाती, उसी तरह विनोद भी अपने छुटकारे का कोई उपाय बार-बार सोच रहा था; लेकिन मन-ही-मन, किसी अनजानी गहराई में उसने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि छुटकारा नहीं था। छुटकारा था ही नहीं !

●●

म वहा करता हू, जा भालू करत

वह नन्हा-सा लड़का चुपचाप सो रहा था। एक हाथ से उस
अपने खिलौने-भालू को आलिंगन मे ले रखा था। भालू की वटन
लड़के की मुँदी हुई आँखों के नजदीक ही थी।

सहसा लड़के के पिता ने वहाँ प्रवेश किया। पिता अकेल
काजल जैसी काली दाढ़ी वाला एक लम्बा आदमी उसके साथ थ
चुपके-से चल कर, उस नन्हे-से लडके के पलग के पास पहुँच गए

नन्हे लडके का नाम था दिलीप। प्यार से उसे सब दीप
दीप के पिता के हाथ में एक खिलौना-भालू था—बिल्कुल वैसा ही
कि उस वक्त दीप ने अपने आलिंगन मे लिया हुआ था।

पिता ने दीप के आलिंगन मे से उस भालू को चुपके से नि
जिस खिलौने भालू को पिता अपने साथ लाया था, उसे उसने दीप
न में सरका दिया। इन हरकतो से दीप की नीद मे खलल तो ज
र उसकी नीद न खुली। जरा-सा कसमसा कर दीप फिर ज्यों-
या।

दीप के पिता ने अपनी उँगली नाक पर रख कर, साथ आए
ले को चुप रहने का इशारा किया। दाढ़ी वाले ने 'हाँ' में सिर
दोनों जिस तरह चुपके-चुपके भीतर आए थे, उसी तरह वे चुपके
कल गए।

"अगर हम दीप के पास दूसरा भालू न छोड़ते, तो वह थोडी
ग कर चीखने लगता।" दीप का पिता बुदबुदाया, "उसे अपने
हद प्यार है।"

दाढ़ी वाले उस लम्बे व्यक्ति का नाम था तरुणचन्द्र। उसने भी बु
ही कहा, "और अब हमारा काम शुरू हो रहा है!"

तरुणचन्द्र ने हाथ बढ़ाकर खिलौने-भालू को अपनी मुट्ठी में ले लिया। मुट्ठी की जकड़न ऐसे कि भालू से रहा न जा सकी। बटन जैसी उसकी आंखें दर्द से फैल गई।

"मुझे वापस दीप के पास ले जाओ।" भालू ने अपनी बारीक आवाज में कहा।

"भालू मुझे दे दो।" दीप के पिता ने तरुणचन्द्र से कहा, "यह मुझे पहचानता है। मेरे पास यह शिकायत नहीं करेगा।"

दीप के पिता का नाम था नवीनकुमार। तरुणचन्द्र की तरह वह भी एक सरकारी बुद्धिजीवी था। उन दोनों को डाक्टरेट की डिग्री सरकार ने ही दी हुई थी।

किन्तु, वैचारिक मतभेद के कारण, उन दोनों ही पर अब सरकार की कृपा नहीं रही थी। दोनों को उनके पदों से अलग कर दिया गया था। बरसों बरसों से वे बेकार थे। सरकार से मिलने वाली नाम-मात्र की पेन्शन ही उनकी आजीविका का प्रमुख आधार थी।

तरुणचन्द्र ने वह भालू नवीनकुमार को वापस दे दिया। नवीनकुमार का स्पर्श पहचान कर भालू चुप हो गया।

उन दोनों पुरुषों ने घर के तहखाने में बने हुए एक शान्त कमरे में प्रवेश किया।

वहीं रमाचन्द्र उन दोनों का इन्तजार करता बैठा था। उन्हें प्रवेश करते देखते ही वह उठ खड़ा हुआ। "लाइये भालू मुझे दीजिए।" रमाचन्द्र ने हाथ बढ़ा दिया। रमाचन्द्र का स्वभाव ही ऐसा था—वह हमेशा जल्दबाजी किया करता।

किन्तु जल्दबाजी के बावजूद वह अपना काम कभी बिगाड़ता नहीं था। रमाचन्द्र एक पहुंचा हुआ वैज्ञानिक था। नवीनकुमार और तरुणचन्द्र की तरह रमाचन्द्र पर भी सरकार की कुटिल दृष्टि ही थी।

रमाचन्द्र के हाथ में आते ही खिलौना-भालू डर गया और चीखने लगा। "छोड़ दो, मुझे जाने दो।"

दीप का पिता नवीनकुमार उन चीखों से पसीज गया, लेकिन रमाचन्द्र

ने, जो वैज्ञानिकों का ढीलाढाला राष्ट्रीय चोगा पहने हुए था, ठण्डे और भाव-विहीन स्वर में कहा, "इसकी चीखों पर ध्यान न दें। यह सिर्फ़ एक मशीन है।" इसके साथ ही इलाचन्द्र ने खिलौने-भालू को पेट के बल मेज पर रख दिया। फिर उसने एक छुरा उठा लिया।

छुरे को इलाचन्द्र भालू की पीठ में भोंकने ही वाला था कि नवीनकुमार का चेहरा फक पड़ गया।

"आप भी, नवीन भाई, कमाल करते हैं।" इलाचन्द्र हँसा, "क्या अपनी भावनाओं पर आप ज़रा भी काबू नहीं रख सकते? आखिर आप एक आर्मिंग आदमी हैं। आपको तो अपनी तर्क-शक्ति पर ही ज्यादा भरोसा करना चाहिए। अरे, भई, यह तो मशीन है, सिर्फ एक मशीन।"

और इलाचन्द्र ने एक झटके के साथ छुरा भालू की पीठ में भोंक कर, ऊपर से नीचे खींच दिया। भालू की पीठ उसी तरह खुल गई, जैसे किसी का मुँह खुलता है।

"मर गया, हाय, मर गया!" भालू विलाप करने लगा। मारे दर्द के उसके हाथ-पैर ऐंठने लगे। नवीनकुमार ने निगाह दूसरी ओर फेर ली। न चाहते हुए भी नवीनकुमार बुदबुदा उठा, 'हम कितने मजबूर हैं। हमें कैसा काम करना पड़ रहा है।'

इलाचन्द्र चुप रहा। उसने निगाह नहीं घुमाई थी। इलाचन्द्र की कार्य-वाही को वह खामोशी से देख रहा था। भालू के भीतर हल्की-सी एक सिसक हुई। इसके साथ ही भालू के हाथ-पैर ढीले पड़ कर स्थिर हो गए। भालू बेहोश हो चुका था। इलाचन्द्र स्क्रू-ड्राइवर से उसके भीतर की एक प्लेट खोलने लगा।

तब तक नवीनकुमार के मस्तक पर पसीना आ चुका था। रूमाल से पसीना पोंछते हुए उसने सोचा, 'इलाचन्द्र सच कहता है। मुझे भावुक नहीं बनना चाहिए।'

दूरदर्शन प्रणाली का एक पर्दा एक कमरे में लगा हुआ था। सारे शयन-कक्ष में सोता शेर उस पर्दे पर दिखाई दे रहा था। नवीनकुमार की आँखें पर्दे पर टिक गईं। शेर को कुछ मालूम ही नहीं! क्या हो, यदि शेर अभी

जाग जाए क्या वह पहचान लेगा कि जो खिलौना-भालू उसकी बाँहों में है, वह कोई ग्रौर ही खिलौना-भालू है ? नहीं। नींद के खुमार में वह इतनी दूर तक नहीं सोच पायेगा। करवट बदल कर वह फिर से सो जाएगा—किसी और भालू को ही बाँहों में लिए-लिए।

ग्रौर जब तब सुबह होगी, किसी ग्रौर भालू को हटा कर, दीप के ग्रसली भालू को वापस उसकी बाँहों में रख दिया जायेगा। कितना ग्रासान ! लेकिन कितना सनसनीखेज !

तरुणचन्द्र ने ग्रपनी कलाई-घड़ी में देखा—रात के नौ बज चुके थे। "यह भमेला कब तक खत्म होगा ?" तरुणचन्द्र पूछे बिना न रह सका।

"इस प्रयोग का रिहर्सल हम कई बार कर चुके है। जितना समय रिहर्सल में लगा, उतना ही समय, ग्रभी, प्रयोग में भी लगेगा। जाहिर है कि यह काम सुबह के छह बजे से पहले खत्म नहीं हो सकेगा। हम तीनों खूब अच्छी तरह जानते हैं कि यह काम कब खत्म होगा। फिर ऐसा सवाल पूछने का ग्रर्थ क्या है ?" इलाचन्द्र ने नाराजगी से कहा, फिर वह एक सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र से भालू के भीतर जाँच-पड़ताल करने लगा। वह बुदबुदा रहा था, "मुझे शब्द-ज्ञान का कैप्सूल निकाल कर उसमें कई रद्दोबदल करने हैं। स्मृति के चक्के भी बदलने हैं। क्या ग्राप सोचते हैं, यह काम चुटकियों में हो सकता है ? छह के साढ़े छह भी बज सकते है, लेकिन छह से पहले इस काम के खत्म होने का सवाल ही नहीं उठता।"

"क्या मैं फिर से याद दिलाऊँ कि सात बजे दीप की नींद खुल जायेगी ?" नवीनकुमार ने कहा, "असली भालू छह बजे तक उसके पास पहुँच ही जाना चाहिए।"

"मुझसे बातें मत कराइए। इस काम में मुझे ग्रपना ध्यान पूरी तरह लगाने दीजिये।" इलाचन्द्र ने रौबीले स्वर में कह दिया, "ग्रपनी ग्रोर से मैं पूरी कोशिश करूँगा कि छह बजने से पहले ही ग्रसली भालू को हम दीप की बाँहों में वापस पहुँचा दें, लेकिन मैं गारण्टी कैसे दे सकता हूँ? फिलहाल ग्राप चुप रहिए, प्लीज !"

तरुणचन्द्र ग्रौर नवीनकुमार चुपचाप सोफे पर बैठ गए। तहखाने के उस कमरे

में एक भारी-भरकम मशीन लगी हुई थी। इलाचन्द्र ने भालू के भीतर से शब्द-ज्ञान का कैप्सूल निकाल कर उस मशीन के एक विशेष कक्ष में डाल दिया। फिर उसने उस मशीन के कौन-कौन से बटन दबाए और कौन-कौन से हैंडिल घुमाये, तरुणचन्द्र और नवीनकुमार को कुछ समझ में न आया। वे दोनों भले ही सरकारी बुद्धिजीवी थे, किन्तु वे वैज्ञानिक तो थे नहीं। लिहाजा, उन्होंने सोफे की पीठ के साथ टिक कर ऊँघने की कोशिश की।

भालू के शब्द-ज्ञान के कैप्सूल की आवाजें, उस भारी-भरकम मशीन के स्पीकर में से सुनाई देने लगी थीं, "मुझे जाने दो···नहीं, नहीं, दीप! ऐसा मत करो···अच्छे बच्चे ऐसा नहीं करते···तुम्हारे डैडी को यह बात पसन्द नहीं आयेगी, दीप!···हाय, मर गया! बचाओ!···मुझे दीप के पास वापस ले जाओ···अच्छा बच्चा, अच्छा बच्चा, अच्छा बच्चा···बुरा बच्चा···दीप! ऐसा मत करो···"

इन वाक्यों और शब्दों के बीच-बीच में मशीन की खड़खड़ और घड़घड़ भी सुनाई दे जाती। शब्द-ज्ञान के कैप्सूल की आवाजें, सारी रात, किसी प्रेत की पुकारों की तरह, उस सन्नाटे में गूँजती रहीं···

"लो, हो गया!" छह बजने में अभी पाँचेक मिनट की देर थी कि इलाचन्द्र ने ऐलान कर दिया। प्रसन्नता और सन्तोष की मुस्कान उसके चेहरे पर खिली हुई थी। सारी रात का जगा होने के बावजूद उसके तन-मन पर थकान की कोई छाया नहीं थी। वह भालू की पीठ को पुन: सी रहा था।

सुबह की पहली किरण अभी नहीं फूटी थी। दीप बेखबर सो रहा था। नवीनकुमार ने एक गहरी साँस ली। वह साँस सुख की थी या दु:ख की, स्वयं नवीनकुमार ही न समझ पाया। वह बुदबुदाया, "जीवन में ऐसा प्रयोग मैं फिर कभी न होने दूँगा—किसी पर भी नहीं।"

"मुझे आज पहली बार पता चला कि आप कितने भावुक और धार्मिक आदमी हैं!" इलाचन्द्र ने हास्य बिखेरा। अगले ही क्षण उसका हास्य डब गया। उसका चेहरा एकदम पथरीला हो उठा। नवीनकुमार उसकी तीखी निगाहों का सामना न कर सका। आँखें चुराते हुए नवीनकुमार ने कहा, "नहीं···मैं न भावुक हूं, न धार्मिक!" लेकिन नवीनकुमार का स्वर बहुत

घीमा था।

"अभी-अभी दीप कसमसाया !" तरुणचन्द्र ने दूर-दर्शन के परदे की ओर देखते हुये कहा, "कहीं आज वह सात बजने से पहले ही न जाग जाए। हमें *उसका भालू वापस उसकी बाहों में रख देना चाहिए—तुरन्त !"*

"हां, चलिए···" नवीनकुमार बुदबुदाया। तहखाने के उस कमरे से वे तीनों बाहर निकलने लगे···

●●

दीप एक अच्छा लड़का था। बड़ा होने पर वह एक अच्छा विद्यार्थी निकला। भले ही उसने पाठशाला जाना शुरू कर दिया, लेकिन अपने भालू का साथ उसने न छोड़ा। रोज ही वह अपने भालू से बातें किया करता।

"क्यों, भालू, सात और पांच कितने होते हैं ?"

उस खूबसूरत खिलौने-भालू ने बालों से आच्छादित अपने हाथ-पैर हिलाए, आंखें मटकायीं और कहा, "दीप को बाकायदा मालूम है कि सात और पांच कितने होते हैं। जो दीप को मालूम है, वही वह मुझसे क्यों पूछता है ?"

"मैं तुम्हारी जांच करना चाहता था। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि सात और पांच तेरह होते हैं।"

"गलत। तेरह नहीं, बारह ! दीप को अपनी पढ़ाई में ज्यादा ध्यान लगाना चाहिए। भालू की नेक राय यही है कि दीप को खूब सावधान रहना चाहिए।"

"कैसा बेवकूफ बनाया !" दीप हंस पड़ा, जवाब मैंने तुम्हारे ही मुंह से उगलवा लिया कि नहीं ?"

"दीप शैतान है ! ज्यादा शैतानी अच्छी नहीं।"

लेकिन दीप हंसता जा रहा था।

वह युग था चौबीसवीं सदी का। शीशकाय कम्प्यूटरों, यन्त्र-मानवों, आकाश-यानों इत्यादि का सवाल इतनी मामूली बात हो चुकी थी कि ये सारी जिम्मेदारियां किशोर-किशोरियों को सौंप दी गई थीं। दीप अभी किशोर नहीं हुआ था, लेकिन किशोर-वय की जिम्मेदारियों को सम्भालने की तैयारियां उसे अभी से ही करनी थीं। हर पाठशाला के हर विद्यार्थी को एक-

एक भालू दिया जाता था। वह खिलौना-भालू हर बच्चे के साथ हमेशा रहा करता। बच्चे अपने-अपने भालुओं से बातें करते। नैतिक क्या है और अनैतिक क्या, अच्छा क्या है और बुरा क्या, सुन्दर क्या है और असुन्दर क्या, आदि सारी शिक्षाएँ बच्चों को अपने भालुओं से ही मिलती थीं।

बच्चे जब बड़े होते, तो भालुओं का त्याग कर देते। फिर वे भालू केवल किसी सजावट की चीज की तरह इस्तेमाल होते, किन्तु तब तक उनका फर्ज भी तो पूरा हो चुका था। कई भालू सजावट की चीज भी न बन पाते। किसी अलमारी में, किसी पौधे के पीछे पड़े-पड़े वे धूल खाते रहते।

जब दीप अठारह वर्ष का हुआ, तो उसने अपने भालू को निजी पुस्तकालय में, एक ऊँची अल्मारी पर रख दिया। सदा-कदा वह उस भालू पर स्नेह की निगाह डाल लिया करता।

उस दिन···

दीप विश्व-विद्यालय जाने की तैयारियों में था कि सहसा फोन बज उठा। फोन के पास ही लगे परदे पर दीप ने अपने पिता का चेहरा उभरते देखा। दीप ने फोन उठाया।

"दीप ?"

"हाँ, डैडी।"

"जरा नीचे आओ न। एक जरूरी काम है।"

पिता का स्वर जिस तरह काँप रहा था, पिता के चेहरे का रंग जिस तरह उड़ा हुआ था, उससे दीप को बड़ा आश्चर्य हुआ। "अभी आया।" कह कर उसने फोन रख दिया।

तहखाने के कमरे में जब दीप पहुँचा तो वहाँ रमाकान्त और तरुणचन्द्र भी मौजूद थे। रमाकान्त को दीप खास पसन्द नहीं करता था, लेकिन, पिता के आदेशानुसार, उसे वह 'दादा' कह कर पुकारता था। तरुणचन्द्र को दीप 'चाचा' कहता था। उसने अपने दादा और चाचा को नमस्कार किया, फिर पिता की तरफ देखा। तीनों बुजुर्गों की आँखें दीप पर एक अजीब ढंग से स्थिर हो चुकी थीं। दीप को अटपटा-सा लगा। "क्या बात है ?" दीप ने बुदबुदाहट में पूछा।

"बैठो।" दीप के पिता ने कहा। दीप बैठ गया।

"कोई गडबडी तो नहीं ?" दीप पूछे बिना न रह सका।

"गडवडी ? हाँ, गडवडी है—बहुत बडी गडबडी है।" स्वर दीप के पिता का ही था, "सारी दुनिया मे गडबडी फैली हुई है- एक लम्बे अरसे से।"

"आप का इशारा 'इंगितवादियों' की ओर तो नहीं ?" दीप ने पूछा। उसने अपने पिता को हमेशा इस 'इंगितवाद' के ही कारण परेशान देखा था।

"हाँ, दीप, 'इंगितवाद' के बढते प्रभाव को देखकर मुझे न दिन को चैन है, न रात को नींद।"

"लेकिन, डैडी, मुझे समझ मे नही आता कि आपकी सहायता मैं किस तरह करूँ।"

"दीप, मुझे विश्वास है कि मेरे पुत्र के नाते तुम ने मेरे ही विचारो को सच मान कर ग्रहण किया है।"

"हाँ, डैडी, 'इंगितवाद' से मुझे भी उतनी ही नफरत है, जितनी आप को लेकिन शायद मैं आपकी तुलना मे थोडा कम परेशान हूँ "

"वह इसलिए कि अभी तुम किशोर हो। अभी तुम पर वह गुजरी नहीं है, जैसी कि मुझ पर—मेरे सभी मित्रो पर एक अरसे से गुज़र रही है।" दीप के पिता का स्वर भावुक होने लगा था, "बेटे ! जब तुम्हारी माँ आखिरी सास ले रही थी, मैंने उसे वचन दिया था कि मैं तुम्हें अच्छी-से-अच्छी परवरिश दूँगा। मुझे विश्वास है कि इस फर्ज को मैंने ठीक-ठीक निभाया है··· इसीलिए आज तुम मेरे विचारो के पोषक हो, न कि विरोधी···"

"डैडी ! यदि मेरा जन्म किसी और परिवार मे हुआ होता, तब भी··· 'इंगितवाद' से मैं उतनी ही नफरत करता, जितनी आज करता हूं। मेरे सामने यह भली-भाँति स्पष्ट हो चुका है कि 'इंगितवाद' के प्रचारक जनता को निष्क्रिय बना कर स्वयं अपनी तानाशाही चलाते रहना चाहते हैं। अपनी सक्रियता के लिए वे सारी दुनिया को निष्क्रियता के शिकन्जे मे जकडना चाहते हैं।"

"बिल्कुल ठीक ! अपने पुत्र से मुझे इन्ही शब्दों की आशा थी।" नवीन-

कुमार बोल उठा, "और दीप, तुम यह भी जानते हो कि इस 'इंगितवाद' का सबसे बड़ा प्रचारक है बारीन्द्र। सरकार उसकी है, तानाशाही भी उसी की है। उसी ने मुझे—और मेरे साथियों को—जबरन रिटायर कर दिया है। बारीन्द्र नियमित रूप से अपना कायाकल्प करवाता रहता है। मेरा तो ख्याल है कि अभी कम-से-कम सौ वर्षों तक वह अपनी कुर्सी छोड़ने वाला नहीं।"

"जबकि बारीन्द्र को जल्द-से-जल्द कुर्सी से हटा दिया जाना चाहिए।" यह स्वर था इलाचन्द्र का। वह काफी देर बाद बोला था और बिल्कुल अप्रत्याशित बोला था। सब उसी की ओर देखने लगे, "मुझ जैसे जबर्दस्त वैज्ञानिक का भी बारीन्द्र ने किस कठोरता से दमन किया है, क्या तुमसे छिपा है, दीप ?"

"नहीं, दादा, मैं सब जानता हूँ।" दीप ने उत्तर दिया। इलाचन्द्र को दीप पसन्द करे, चाहे न करे; इस सच्चाई को भला कैसे नकारा जा सकता था कि बारीन्द्र की सरकार ने इलाचन्द्र की हालत हर तरह से खस्ता कर दी थी।

'बेटे !" नवीनकुमार ने आगे चलाया, बारीन्द्र का विरोध मैं केवल अपने स्वार्थ के लिए नहीं कर रहा। मुझ जैसी न जाने कितनी प्रतिभाएँ हैं, जिन्हें बारीन्द्र ने कुचल कर रख दिया है। उन सब के उद्धार के लिए बारीन्द्र का नाश होना ही चाहिए।"

"क्योंकि जब तक नाश नहीं होगा तब तक वह कुर्सी नहीं छोड़ेगा।" यह स्वर था तरुणचन्द्र का—ठोस और दृढ़ !

कई क्षणों तक मौन छाया रहा, जिसे इलाचन्द्र ने भंग किया, "जो बारीन्द्र का नाश करेगा, आज वह मानव-जाति के सबसे बड़े सेवक के रूप में पूजा जायेगा।"

"लेकिन यह सम्भव है ही नहीं।" दीप ने कहा—"क्या नाम था उस कुकर्म का ? हाँ, कत्ल !. कत्ल नामक उस कुकर्म से मानव-जाति सदियों पहले पूर्णतया छुटकारा पा चुकी है। कत्ल के बारे में आज हम सोच जरूर सकते हैं, उस पर बहसें भी कर सकते हैं—लेकिन यदि सचमुच कत्ल करने के लिए कहा जाये, तो आज सारी दुनिया में एक भी व्यक्ति तैयार नहीं होगा। चौंतीसवीं

सदी की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक यह भी है कि आज का मानव किसी का कत्ल कर ही नहीं सकता। बचपन से ही, खिलौने-भालुओं के जरिये, एक-एक मानव-सन्तान में ऐसे संस्कार डाले जा चुके हैं कि आज अपवाद-स्वरूप भी, एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं है, जिसमें किसी का कत्ल करने की क्षमता हो।"

'नहीं, दीप, ऐसी बात नहीं है।"

"क्या मतलब ?" दीप ने इलाचन्द्र की आँखों में देखा, और फिर अपने पिता की आँखों में।

'सारी दुनिया में एक आदमी जरूर है ऐसा, जिसमें कत्ल करने की क्षमता है।" इलाचन्द्र का एक-एक शब्द, उस सन्नाटे में, जैसे कि बार-बार प्रतिध्वनित हो रहा था।

"कौन ?"

"तुम !"

"मैं ?"

"हाँ, दीप, तुम !" नवीनकुमार ने एक कदम आगे आते हुए कहा, "मैं तुम्हारा पिता हूँ। मुझ पर तो विश्वास करोगे न ? सचमुच तुम में वह क्षमता है, जिससे तुम किसी का भी कत्ल कर सकते हो।"

"लेकिन ''लेकिन यह सम्भव कैसे है ?" दीप को अपने ही कानों पर यकीन नहीं हो रहा था।

"तुम्हारे खिलौने-भालू के दिमाग में से हमने कुछ वाक्य, कुछ विचार, कुछ शब्द निकाल दिये थे। बचपन से ही तुम्हारे खिलौने-भालू ने तुम्हें सारे संस्कार दिए हैं, लेकिन'' बस, एक संस्कार नहीं दिया है। खिलौने-भालू ने तुम्हें कभी बताया ही नहीं है कि किसी का कत्ल करना एक गलत काम है।"

"लेकिन, डैडी, मुझे तो अच्छी तरह मालूम है कि किसी का कत्ल करना एक गलत काम है।"

"मालूम इसलिए है कि तुमने अपने दोस्तों से, आस-पास के हर व्यक्ति से यह बात सुन रखी है।" नवीनकुमार का स्वर जारी रहा, "किन्तु यह बात तुम्हारे भीतरी मन से कभी नहीं उठती। अगर तुम किसी का कत्ल करने की

"गोली की स्पीड क्या होती है ?"

"इतनी तेज कि गोली को आँखों से देखा भी नहीं जा सकता।"

"क्या गुरुत्वाकर्षण के कारण गोली जरा नीचे झुककर निशाना चूक नहीं जाएगी ?"

"गोली की ज़बर्दस्त स्पीड के कारण गुरुत्वाकर्षण का दबाव नगण्य हो जाता है।" इलाचन्द्र ने उस हथियार को दीप के हाथ में थमा दिया, "इसे रिवाल्वर कहते हैं। इसमें से एक के बाद एक, कई गोलियाँ छोडी जा सकती हैं। यह आटोमेटिक है—नई गोलियाँ, अपने आप, नली में से दगने के लिए, भीतर ही भीतर, सरकती रहती हैं।"

दीप ने रिवाल्वर को उलट-पलट कर देखा। कितना सुन्दर लग रहा था। रिवाल्वर उसके हाथ में—आहा! दीप ने लबलबी पर उंगली रख दी। फिर उसने इलाचन्द्र की छाती का निशाना लेकर लबलबी दबा दी।

धाँय!

और इलाचन्द्र ढेर हो गया।

"दीप! होश में आओ!" दीप का पिता चिल्लाया, "यह तुमने क्या किया ?"

इलाचन्द्र की मौत का दीप पर कोई असर नहीं हुआ था। किसी की भी मौत से विचलित होने के संस्कार उसमें थे ही नहीं। उसने पलट कर, अपने पिता की ओर, ख़ूँख्वार निगाहों से देखा, "मैं मानता हूँ, डैडी, कि धारीन्द्र और उसके 'इंगितवाद' ने मानवता का बहुत अहित किया है, लेकिन रिवाल्वर नामक इस हथियार को, जो कि सदियों से मरा हुआ था, फिर से जिन्दा करने वालों को क्या कहा जाए ? क्या वे मानवता के दुश्मन नहीं हैं ?"

आखिरी वाक्य पूरा करते-करते दीप अपने पिता नवीनकुमार को गोली मार चुका था। बडी सफाई के साथ उसने नवीनकुमार के दिमाग का निशाना लिया था। नवीनकुमार अपने पुत्र के शब्दों का अर्थ ठीक से समझता, या कि यही जान सकता कि उसका कत्ल पुत्र के हाथों से ही होने वाला है, इससे पहले ही, दीप की गोली उसके दिमाग के आरपार निकल चुकी थी। वह

पत्थर की तरह गिरा। कराह भी न पाया वह।

नक्षत्रचन्द्र चीख उठा था। जान बचाने के लिए वह सरपट भागा, लेकिन दीप निशाना लेकर लबलबी दबा चुका था। धांय ! और नक्षत्रचन्द्र लुढ़क गया।

निशाना लेने का अभ्यासी न होने के कारण दीप, केवल एक गोली से, नक्षत्रचन्द्र का अन्त न कर सका। घायल नक्षत्रचन्द्र उठा और भागने लगा। दीप ने फिर से गोली चलाई। इस बार नक्षत्रचन्द्र ऐसा गिरा कि कभी न उठ सका। उसके मन और दिमाग के कतरे फर्श पर दूर-दूर तक छितर चुके थे।

दीप को वह रिवाल्वर अपने हाथ में अब बहुत भारी-सा लग रहा था। दीप की रग-रग जैसे किसी बोझ से टूटी जा रही थी। निशा ने दीप को उस के अपने कमरे के सामने पहुँचा दिया। कमरे में घुस कर दीप ने एक स्टूल उस अल्मारी के पास खिसकाया, जिसके ऊपर उसका किसी समय का प्यारा साथी वही खिलौना-भालू रखा हुआ था। स्टूल पर चढ़कर दीप ने खिलौने-भालू को नीचे उतारा और पलंग पर फेंक दिया। भालू आँखें मटकाने लगा। हाथ जोड़ कर उसने कहा, "नमस्ते, दीप !"

"भालू !" दीप बोला, "मेरा जी करता है, बगीचे के सारे फूलों को रौंद डालूँ।"

"नहीं, दीप !" भालू ने कहा, अच्छे बच्चे ऐसा नहीं करते।" भालू अपने नन्हे-नन्हे हाथ-पैर हिला रहा था।

"भालू ! मेरा जी करता है, पड़ोसी की खिड़की में पत्थर फेंकूँ।"

"नहीं, दीप !" भालू ने हाथ-पैर हिलाकर आँखें भी मटकाईं, "अच्छे बच्चे ऐसा नहीं करते।"

"भालू, क्यों न मैं किसी का कत्ल कर दूँ ?"

भालू चुप रहा। उसके हाथ-पैर न हिले। आँखों में भी कोई हरकत न

दीप ने लबलबी दबा दी। गोली ने खिलौने भालू की धज्जियाँ तार, कैप्सूल, स्मृति-चक्के, ट्रान्जिस्टर—न जाने क्या-क्या—

एकदम उड़ा और पलंग के चारों तरफ बिखर गया।

"भालू ! भालू ! तुम चुप क्यों रहे, मेरे भालू ! तुम कुछ बोले क्यों नहीं ? मैं वही करता हूँ, जो भालू कहता है।" इन शब्दों के साथ दीप ने रिवाल्वर की लबलबी एक बार फिर दबा दी। धाँय ! की आवाज़ एक बार फिर गूँजी। गोली स्वयं दीप के दिमाग़ के आरपार निकल चुकी थी। दीप हमेशा के लिए गिर गया—और वह रिवाल्वर भी।

तूफान उठ रहा है

बाहर तूफान उठ रहा था। स्टेशन के भीतर जो दो व्यक्ति थे, जिनका तूफान उनकी समस्या नहीं था। कमलेश ने नलके की टोंटी फिर से मोड़ दी और इन्तजार कर रहा था। नलके से इस बार भी पानी न निकला।

"क्यों बोर कर रहे हो, यार! पानी नहीं आएगा, कह दिया न!" नरेश बोला।

कमलेश ने आवेश में आकर टोंटी को दो-तीन घूंसे मारे। ज़रा-सा पानी बाहर निकला और रुक गया। आखिरी बूंद नलके के मुंह पर लटकी रह गई। वह कांप रही थी। डोल भी रही थी। बूंद गिर गई। बस।

"ऐसी की तैसी!" कमलेश ने मुंह बिगाड़ते हुए कहा, "न जाने कहीं से पाइप में फिर रोड़ा अटक गया है! अपने पास अब टंकी में कितना पानी है?"

"हद-से-हद चार गैलन—बशर्ते टंकी लीक न करने लगी हो।" नरेश ने उत्तर दिया। अब वह भी टोंटी को घूरने लगा था। हताश कदमों से वह नजदीक आया। उसकी लम्बी उंगलियों ने टोंटी को कुछेक झटके मारे। नरेश एक लम्बा-चौड़ा युवक था और फिर भी उसके व्यक्तित्व में विशेष तरह की नज़ाकत थी। उसकी दाढ़ी, जो घनी नहीं मानी थी, बढ़ गई थी। नरेश को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह व्यक्ति किसी उजाड़, विदेशी ग्रह में पृथ्वी द्वारा स्थापित निरीक्षण-केन्द्र का संचालन करता होगा। 'अंसोस' (अंतरिक्ष खोज संस्थान) ने गौर ही नहीं किया था कि नरेश का व्यक्तित्व किसी चित्रकार, फोटोग्राफर या कवि जैसा है।

इसमें सन्देह नहीं कि नरेश जैसे योग्य प्राणि-शास्त्री और वनस्पति-शास्त्री पूरी पृथ्वी पर गिनती के ही थे। नाजुक व्यक्तित्व के बावजूद वह कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी आश्चर्यजनक धैर्य का परिचय दे सकता था। वह

उन लोगों में से एक था, जो केवल उन्नति करने के लिये पैदा होते हैं। क्या आश्चर्य, यदि उसे 'सेरेल्ला-प्रथम' नामक इस ग्रह पर उतरने वाले प्रथम दो मनुष्यों में से एक के रूप में भेजा गया!

"एक ही उपाय है" 'नरेश ने कहा, "हम खुद बाहर निकलें और देखें कि पाइप में रोड़े वाली जगह कहाँ है। रोड़े को हमें अपने ही हाथों से हटाना होगा।"

"मुझे भी यही लगता है", कमलेश ने फिर से उस टोंटी को जोरों से हिला दिया, "लेकिन बाहर कैसे निकलेंगे? शोर सुनते नहीं, तूफान किस बुरी तरह फुफकार रहा है!"

कमलेश कद में ऊँचा नहीं था, मगर उसके एक-एक पुट्ठे में स्वास्थ्य मानों उबला पड़ रहा था। उसकी गर्दन गैंडे की तरह मोटी थी। सारे चेहरे पर तीखी लालिमा। आँखें बड़ी-बड़ी। किसी विदेशी ग्रह में पृथ्वी के निरीक्षण-अधिकारी का काम करने का उसके लिए यह तीसरा अवसर था।

'अंखोज' के अन्तर्गत उसने और भी कई काम समय-समय पर किए थे, लेकिन किसी में उसका मन उतना नहीं रमा था, जितना निरीक्षण-अधिकारी के इस काम में। जान मुट्ठी में रखकर घूमने वाले दीवाने ही इस क्षेत्र में जा सकते थे और वह ऐसा ही एक युवक था। अंतरिक्ष से सम्बन्धित अन्य अनेक संस्थान ऐसे थे, जो स्वयं पृथ्वी पर नौकरी दे सकते थे, मगर सारी जिन्दगी पृथ्वी पर ही काट देना —भला यह भी कोई बात हुई?

इस 'सेरेल्ला-प्रथम' ग्रह पर कमलेश और नरेश का अधिकांश समय स्वयं को जीवित रखने के प्रयासों में बीतता था। अनुसन्धानों के लिए उन्हें बहुत कम समय मिल पाता था। विदेशी ग्रहों पर यही तो हो सकता है! जीवित रहो और असुविधाओं को भोगो! एक वर्ष पूरा होने पर जो यान आयेगा, वह इन दोनों युवकों को छुट्टी मनाने के लिए पृथ्वी पर ले जायेगा और यहाँ किन्हीं अन्य दो को छोड़ जाएगा। पृथ्वी के अधिकारी नरेश और कमलेश के कार्यों का लेखा-जोखा देख कर तय करेंगे कि उन्हें फिर से ब्रह्माण्ड में भेजा जाए या नहीं और यदि हाँ तो कहाँ।

हर बार, जब भी कमलेश ने अंतरिक्ष-यात्रा की थी, अपनी पत्नी से उस

"जानता हूँ, यार, अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन अगर मैं थोड़ा-सा नखरा करता हूँ तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है ?" कमलेश मुस्करा उठा, "चलो, आओ, देखें, स्पैनिक मौसम की क्या भविष्यवाणी करता है।"

जब वे निरीक्षण-केन्द्र की लम्बाई को पार कर रहे थे, इस्पात के फर्श पर उनके जूते बज उठे। भोजन और ओक्सजन के स्टोर, विभिन्न औजार तथा कल-पुरजे इत्यादि को पीछे छोड़ कर वे दरवाजे तक आ गए। अपने-अपने वायु-मुखौटे पहन कर उन्होंने मुखौटों के भीतर के ओक्सजन-प्रवाह को नियन्त्रित कर लिया। अब वे इस्पात की मोटी चादर से बने दरवाजे को खोल कर 'मिलन-छप्पर' के नीचे जा सकते थे।

"रेडी ?" कमलेश ने पूछा।

"रेडी !"

कमलेश ने बटन दबाया ही था कि दरवाजा खुल गया और तूफान का एक जबर्दस्त टुकड़ा भीतर आ कर घुमड़ने लगा। चीखते तूफान को भेदने के लिए दोनों ने अपने सिर झुका लिए। तूफान की गति पैरों को उखाड़ न दे, इसकी सावधानी बरतते हुए उन्होंने अपने को बाहर निकाला और दरवाजा बन्द कर दिया। वे 'मिलन-छप्पर' के नीचे आ गए थे। यह 'छप्पर' निरीक्षण-केन्द्र का ही एक हिस्सा था। उसकी लम्बाई छह मीटर और चौड़ाई तीन मीटर थी। सारा निरीक्षण-केन्द्र इस्पात से ढका हुआ था, लेकिन यह 'छप्पर' नहीं। 'छप्पर' की सभी दीवारों की रचना छोटे-छोटे ढक्कनों से हुई थी। इन ढक्कनों को कम ज्यादा खोला जा सकता था। इस प्रकार, निरन्तर बहता हुआ तूफान 'छप्पर' के ढाँचे के आरपार निकल तो सकता था, लेकिन खुले मैदान में तूफान की जो गति होती, वह ढक्कनों में से गुजरने के कारण कम हो जाती। 'छप्पर' के नीचे इस गति को काफी हद तक नियन्त्रित किया जा सकता था। पैमाने ने कमलेश और नरेश को बताया कि 'छप्पर' के नीचे वायु की गति ५० किलोमीटर प्रति घण्टा थी।

कितनी असुविधाजनक बात थी कि 'सेरेस्ता' के मूल निवासियों से बातें करने के लिए इतनी तेज बहती हवा में खड़े होकर चिल्लाना पड़े ! लेकिन और कोई चारा भी नहीं था। 'सेरेस्ता' ग्रह पर एक भी क्षण ऐसा नहीं होता, जब

वायु १० किलोमीटर प्रति घण्टे से धीमी बह रही हो। जिनका जन्म ही ऐसे वातावरण में हुआ हो उन भूमि निवासियों से भला यह आशा कैसे रखी जा सकती थी कि वे वार्तालाप के लिए निरीक्षण-केन्द्र के भीतर तक आ जाएँगे, जहाँ हवा चारों ओर से रुकी हुई थी। 'सेरेल्ला'-निवासियों को इतनी रुकी हुई हवा में घुटन महसूस होती थी। यदि निरीक्षण-केन्द्र के भीतर ऑक्सीजन की मात्रा 'सेरेल्ला' के वायुमण्डल जितनी ही कर दी जाती, तो भी 'सेरेल्ला'-निवासी भीतर की 'मृत' हवा में स्वयं भी मृत होने लगते थे! मिनट-दो-मिनट में ही उन्हें चक्कर आने शुरू हो जाते। वे उसी तरह लड़खड़ा उठते, मानो पृथ्वी-निवासियों को शून्य में छोड़ दिया गया हो!

४० किलोमीटर प्रति घण्टे की चाल वाली हवा में वार्ता के लिए मिलना—यह पृथ्वी-निवासियों और 'सेरेल्ला'-निवासियों, दोनों के लिए एक अच्छी सन्धि थी।

कमलेश और नरेश 'मिलन-छप्पर' में आगे बढ़ने लगे। कोने में आपस में उलझी और मुड़ी हुई झाड़ी जैसा कुछ पड़ा था। ज्यों ही कमलेश और नरेश उसके पास आए, उसमें हरकत होने लगी। झाड़ी के अगल-बगल से दो शाखाएँ बाहर निकल आईं। वे इन दोनों के स्वागत में हिलने लगीं।

"नमस्कार!" स्मैनिक ने कहा।

"नमस्कार!" कमलेश मुस्कराया, "कहिए, मौसम कैसा है?"

"ओह, बहुत बढ़िया!"

नरेश ने कमलेश की बाँह पर स्पर्श करते हुए पूछा, "क्या कहा इसने?" जब कमलेश ने स्मैनिक के उत्तर का हिन्दी अनुवाद उसे सुनाया तो उसके होंठों पर गम्भीर मुस्कान आ गई। 'सेरेल्ला'-निवासियों की भाषा अभी तक नरेश की समझ में बिल्कुल नहीं आती थी, हालाँकि यहाँ उसे पूरे आठ महीने हो चुके थे। कमलेश की बात कुछ और थी। उसमें शायद कोई छठवाँ संवेद था, जिसके आधार पर वह किसी भी ग्रह की भाषा चुटकियों में सीख लेता था। नरेश के लिए तो 'सेरेल्ला'-निवासियों की भाषा कुछ बुदबुदाहटों और नन्हीं-नन्हीं सीटियों के अलावा कुछ नहीं थी।

इन दोनों को 'मिलन-छप्पर' में आया देखकर आस-पास के और भी कई

'सेरेल्ला'-निवासी 'छप्पर' में आ गए। चलते-फिरते समय वे विराटकाय मकड़ी जैसे लगते थे। उन अण्डाकार जीवों में से दो-दो शाखाएँ-सी बाहर निकली होतीं, जो उनके मस्तिष्कों तक विभिन्न संवेदनाएँ पहुँचाती थीं। ज़मीन के साथ दुबकी रहने वाली, अण्डाकार, जीवित झाड़ियाँ! 'सेरेल्ला' ग्रह पर आत्म-रक्षा के लिए किसी भी जीव का ऐसा आकार ही सर्वश्रेष्ठ था। यहाँ तक कि कमलेश ने कई बार चाहा था, 'काश! मेरा भी आकार ऐसा ही हो सकता!' "लेकिन वह एक लम्बाकार मनुष्य था। यदि वह लगातार निरीक्षण-केन्द्र के भीतर न घुसा रहे तो 'सेरेल्ला' का तूफान उसके लम्बे आकार की धज्जियाँ उड़ा दे। वह कभी-कभी ही बाहर आ सकता था, जबकि ये 'सेरेल्ला'-निवासी कितने मज़े से हर तरफ टहलते रहते हैं!

कई बार उसने इससे भी भयंकर तूफान में 'सेरेल्ला'-निवासियों को, तूफान की विपरीत दिशा में बढ़ते देखा था। अंडाकार भाड़ी के आठ पैर ज़मीन को बड़ी मज़बूती से पकड़ लेते, दोनों 'संवेदक' आगे का रास्ता टटोलते हुए-से काँपते रहते और 'सेरेल्ला'-निवासी एक-एक कदम बड़ी ठोस शैली में भरता हुआ बढ़ता जाता! यदि 'सेरेल्ला'-निवासियों को उसी दिशा में जाना होता, जिस दिशा में तूफान भाग रहा होता, तो उनके पास एक अनोखा ही तरीका था।! वे अपने आठों पैरों और दोनों 'संवेदकों' को समेट कर अपने भीतर छिपा लेते। तब हर 'सेरेल्ला'-निवासी का आकार ऐसा हो जाता, मानो किसी टोकरी में अध-सूखी भाड़ी काट कर रख दी गई हो। यह जीवित टोकरी तूफान में अपने को निढाल छोड़ देती। तूफान उसे उसी तरह उड़ा ले जाता, जिस तरह किसी सूखे पत्ते को! देखते-देखते 'सेरेल्ला'-निवासी कहाँ-का-कहाँ पहुँच जाता। 'सेरेल्ला' के इन विचित्र जीवों ने ऐसे जहाज़ भी बनाए हैं, जो धरती पर तेज़ी से चलते हैं। चलते क्या हैं, वे तेज़ तूफान में उतराते हुए-से आगे बढ़ते हैं। वे उड़कर आकाश में नहीं चले जाते—चाहे तूफान कितना भी तेज़ क्यों न हो। धरती के नज़दीक, धरती के समानान्तर, सूँ-सूँ करते तूफान में वे अपनी दिशाएँ भी कितनी खूबी से बदल सकते हैं! बस, केवल वे तूफान की ठीक उल्टी दिशा में आसानी से नहीं जा सकते। उन्हें चक्कर काटना पड़ता है।

'अगर ऐसा एकाध जहाज़ पृथ्वी पर पहुँचा दिया जाय तो?' कमलेश

सोचने से न रह सका, 'कैसा हंगामा मच जाए ! लोग देखने के लिए

"अब···इसके बाद का मौसम कैसा रहेगा ?" कमलेश ने
पूछा ।

वह 'सेरेल्ला'-निवासी क्षण-दो-क्षण सोचता रहा । अपने
को आपस में रगड़ते हुए उसने हवा सूंघी ।

"तूफान की गति में थोड़ी-सी तेजी और आएगी···" उन
निर्णयात्मक स्वर में कहा, "लेकिन कोई बहुत गम्भीर बात नहीं है

कमलेश सोच में पड़ गया । जो तेजी 'सेरेल्ला'-निवासी के लिए
है, उसमें पृथ्वी-निवासी मूंगफली के छिलके की तरह उड़ जाएगा
इसके बावजूद सैनिक की घोषणा ने कुछ राहत-सी दी थी ।

नरेश को साथ लेकर कमलेश 'मिलन-छप्पर' की लम्बाई को
करने लगा । निरीक्षण-केन्द्र का दरवाजा खोल कर दोनों भीतर आए
के साथ उन्होंने दरवाजा बन्द कर दिया । वायु-मुखौटे उतार कर उन
में आ गए ।

"देखो भई", नरेश ने कहा, "मेरा तो ख्याल है कि इन्तजार कर
जाए ।"

'सेरेल्ला' पर रहते हुए तूफानों से डरेंगे तो कैसे काम चलेगा ?"
हंसा, "तूफान आगे और तेज होने जा रहा है । बेहतर यही होगा कि
कान पाइप को जांच करने के लिए निकल जाऊं । तूफान तेज होने से
तो मैं वापस आ जाऊंगा ।"

सामने ही 'जगती' खड़ा था । उसकी छत पर एक बन्द धीमा
[illegible] रहा था । 'जगती' नाम कमलेश और नरेश ने दिया था उसे 'सेरेल्ला
आने-जाने के लिए उन्हें निरीक्षण-केन्द्र में जो यान मिला था, उसी का
था 'जगती' । शक्ल में वह ठीक जैसा था और देखने में 'सेरेल्ला'-निवा
जैसा—अजनबी ! उसका पूर्ण निर्माण इंग्लैण्ड में हुआ था । बाहर देख
लिए उसके दोनों छोटी-छोटी खिड़कियां थीं, उनमें लगे हुए मोटे कांच भी
इतने ही मजबूत थे । उसका [illegible]-केन्द्र बहुत नीचे था—उसके
[illegible] ही रखा गया था । 'जगती'

तरफ से बन्द था। उसका एन्जिन डीज़ल से चलता था। उसके सभी छिद्र एवं दरवाज़े धूल-निरोधक आवरण से सुरक्षित कर दिए गए थे। 'जंगली' के छहों टायर बहुत चौड़े-चौड़े थे। जब वह कहीं खड़ा होता तो लगता ही नहीं कि यह वज़नदार राक्षस चल भी सकता होगा।—जबकि वह 'सेरेल्ला' जैसे ग्रह पर आने-जाने के लिए बनाया गया था।

'जंगली' में बैठ कर कमलेश ने शिरस्त्राण पहना। विशेष चश्मे वह पहले ही लगा चुका था। मुलायम सीट के दोनों ओर लटक रहे पट्टे उसने अपनी छाती और पेट पर कस लिए। उसने परीक्षण के लिए एन्जिन को चालू किया, उसकी गूंज को ध्यान से सुना, फिर सिर हिलाया। "ओके!" उसने कहा, "'जंगली' तैयार है! अब गैरेज का दरवाजा खोलने में देर मत करो।"

"शुभ कामनाएँ!" नरेश ने कहा और वहाँ से हट गया।

कमलेश ने 'जंगली' के सभी बटनों और हत्थों इत्यादि की जाँच कर ली। सब ठीक था। उसी समय उसने रेडियो पर नरेश की आवाज़ सुनी, "रेडी मैं दरवाज़ा खोल रहा हूँ।"

"राइट!" 'जंगली' को सब तरफ से बन्द कर लेते हुए कमलेश ने रेडियो पर कहा।

घररर···बजती दरवाज़ा दाहिनी ओर सरकने लगा। ज्यों ही वह पूरा खुला, कमलेश 'जंगली' को चला कर बाहर ले आया। उसके पीछे, दरवाज़ा उसी घरघराहट के साथ बन्द हो गया।

निरीक्षण-केन्द्र एक बहुत बड़े, खुले मैदान के बीच में बनाया गया था। किसी पहाड़ी की ओट में बनाने पर तेज़ हवाओं से राहत ज़रूर मिल सकती थी, लेकिन 'सेरेल्ला' की पहाड़ियों का कोई भरोसा नहीं। आज यहाँ हैं, कल वहाँ! तेज़ हवा किसी भी पहाड़ी को काट कर सपाट कर देती है या नन्ही-सी किसी उठान के ही आस-पास इतने धूल-कण इकट्ठे कर देती है कि उस की चोटी आसमान छूने लगे! वैसे, 'सेरेल्ला' के मैदान भी खतरे से खाली नहीं, किन्तु पहाड़ियाँ कुछ ज्यादा ही धोखेबाज हैं। मैदानों की सब से बड़ी समस्या सिर्फ एक थी—तेज़ हवाओं में उड़ती चट्टानों इत्यादि से बचना। इसका उपाय उन्होंने ढूंढ लिया था। निरीक्षण-केन्द्र के चारों ओर उन्होंने

सैकड़ों मजबूत इस्पाती खम्बे गाड़ दिये थे। ये खम्बे किसी बाड़ के रूप में नहीं लगे थे। वे उसी तरह पास-पास गाड़े गए थे, जिस तरह जंगल में एक-दूसरों से सटे-सटे वृक्ष खड़े होते हैं। सभी खम्बे तिरछे गाड़े गए थे—निरीक्षण-केन्द्र से विपरीत दिशा में तिरछे। इस प्रकार वे खम्बे किसी खिले हुए फूल की तरह थे, *जिसके बीच में निरीक्षण-केन्द्र जम गया था।*

खम्बों के जंगल में से 'जंगली' के आने-जाने के लिए रास्ते छूटे हुए थे। उन रास्तों पर हवा डरावनी सिसकारियाँ भरती रहती। कमलेश 'जंगली' को एक रास्ते पर आगे बढ़ा रहा था। जंगल से बाहर आने के बाद कमलेश ने अंधड़ में छिपी पाइप लाइन को ढूँढ लिया। उसकी सीट के पास, ऊपर, एक परदा-सा लगा हुआ था। पाइप-लाइन का सान्निध्य मिलते ही परदे पर एक सफेद लकीर बन गई। 'जंगली' को पाइप-लाइन के समानान्तर आगे बढ़ना *होगा। ज्यों ही लाइन में रोड़े वाली जगह आएगी, परदे की वह लकीर बुझ जाएगी।*

ऊब-भरा, असीम मरुस्थल कमलेश के सामने फैला हुआ था। कमलेश को उसी दिशा में जाना था, जिस ओर तूफान की गति थी। 'जंगली' बिना किसी दिक्कत के आगे बढ़ने लगा। तूफान के झटके उसे बार-बार ठेल देते। डीजल-एन्जिन की आवाज तूफान में उसी तरह उठी हुई थी, जिस तरह किसी नाव का मस्तूल।

कमलेश ने वायु-गति-मापक पर निगाह डाली। 'सेरेल्ला' का तूफान १०५ किलोमीटर की गति से भाग रहा था।

कमलेश एक-जैसी गति लगातार बनाए रख कर आगे बढ़ता रहा। वह कुछ गुनगुनाने लगा था। कभी कोई झाड़ी 'जंगली' के नजदीक से गुजरती। वह तूफान में झूम रही होती। यदा-कदा टकराहटों की आवाजें भी सुनाई दे रही थीं। तूफान में जो पत्थर उड़ रहे थे, उनके 'जंगली' के साथ टकराने की आवाजें! 'जंगली' पर इन मिइन्तों का कोई असर नहीं था।

"सब ठीक है न?" नरेश ने रेडियो पर पूछा।

"बिल्कुल!" कमलेश ने कहा।

दूर, बहुत दूर, कमलेश ने 'सेरेल्ला'-निवासियों का एक भूमि-महल देखा

उसने अनुमान लगाया कि जहाज़ १५ मीटर से कम लम्बा न होगा। खाड़ी में बोये हुए उनके फूहड़ 'रानर' ज़ोरों से घूम रहे थे। 'सेरेल्ला' पर ऐसी वनस्पति बहुत कम थी, जिनके पत्तों का आकार बड़ा हो। 'सेरेल्ला'-निवासी बड़ी सावधानी और लगन से ऐसी वनस्पतियों की खेती करते। बड़े, परिपक्व पत्तों को आपस में जोड़कर वे मस्तूल बनाते। ऐसा ही एक मस्तूल उस जहाज़ पर लगा हुआ था। जहाज़ का रास्ता ऐसा था कि वह निरीक्षण केन्द्र के नज़दीक से होकर गुज़रता। कमलेश ने उस पर सवार 'सेरेल्ला'-निवासियों को अपने 'संवेदक' बार-बार हिलाते देखा।

उसने अपना ध्यान फिर से पाइप-लाइन पर केन्द्रित कर लिया। 'जंगली' के भीतर तूफ़ान का शोर नहीं के बराबर आ रहा था, लेकिन कमलेश ने क्रमशः उसे बढ़ते महसूस किया। उसने वायु गति-मापक पर उड़ती निगाह डाल ली। तूफ़ान की तेज़ी ११५ किलोमीटर प्रति घण्टा हो चली थी। कमलेश ने गम्भीरता से खिड़की के कांच से बाहर देखा। कांच पर रह रह कर रेत की बौछार होने लगती। 'जंगली' मैदान को पीछे छोड़ कर कुछ पहाड़ियों के नज़दीक से गुज़र रहा था, मगर पहाड़ियाँ स्पष्ट न देखी जा सकीं। वातावरण इतना रेत-मय था कि वे विराट धब्बों में बदल गई थीं। 'जंगली' का पूरा ढाँचा कुछ-कुछ सनसनाने लगा था। तूफ़ान मानो घोषणा कर रहा था कि 'जंगली' भीतर से पोला है। कमलेश ने एक और भूमि-जहाज़ देखा, फिर तीन और। वे बड़ी ढीठता से तूफ़ान को नकारते हुए गुज़र रहे थे। कमलेश ने रेडियो पर नरेश को सूचित किया कि कई भूमि-जहाज़ दिखाई पड़े हैं, ज़रूर कोई खास बात है···

"तुम कहाँ हो इस समय ?" नरेश ने उत्सुकता से पूछा।

"मैं झरने के पास पहुँचने ही वाला हूँ। अब तक कोई रोड़ा नहीं मिला।" कमलेश ने कहा, "भूमि-जहाज़ चक्कर काट कर, ऐसा लगता है, निरीक्षण-केन्द्र के पास इकट्ठे हो रहे हैं।"

"मुझे मालूम है। 'मिलन-छप्पर' के पास छह जहाज खड़े हो गये हैं। कुछ और आ रहे हैं।"

'सेरेल्ला'-निवासी हमें कभी तंग तो नहीं करते, लेकिन···" कमलेश ने सोच

मे अनेक पहाड़ एक-साथ गिराए जाएँ तो भी शायद इतना शोर न होता। तेज़ी से 'जगली' के भीतर घुस कर कमलेश ने दरवाजा बन्द कर लिया। वह इस कदर थक गया था कि उसे सीट पर बैठने का भी मन न हुआ। 'जगली' का फर्श तूफान मे सनसना रहा था। कमलेश आराम करने के लिये फर्श पर लेट गया। तूफान की सनसनी फर्श के माध्यम से कमलेश मे दाखिल होने लगी फिर लेटे कमलेश ने पहली बार नोट किया कि समूचा 'जगली' कुछ-कुछ काँप रहा है गहरी साँस लेकर कमलेश अपनी करवट पर हो गया।

"हैलो ? हैलो ?" रेडियो पर नरेश की चिन्तित आवाज़ सुनाई दी। इच्छा न होने पर भी कमलेश उठा, अपनी सीट पर बैठा और बोला, "यस, माई डीयर !"

"कमलेश, तुरन्त वापस आओ। देखते नही, तूफान १६० तक पहुँच गया है !" नरेश का स्वर था, "मुझे लगता है, यह और बढ़ेगा।"

१६० किलोमीटर प्रति घन्टा ! कमलेश चौकन्ना हो गया। १६० से भी अधिक गति का केवल एक तूफान इन्होने पिछले आठ महीनो मे देखा था। वह इतना भयकर रहा था कि कमलेश उसके बारे मे सोचना भी नही चाहता था। तब हवा की गति २१० से भी ज्यादा हो गई थी…

उसने 'जगली' को तत्काल घुमाया और तूफान की विपरीत दिशा मे बढ़ना हुआ वापस जाने लगा। 'थ्राटल' पूरा खीच देने पर भी उसने पाया, 'जगली' धीमे-धीमे सरक रहा है। डीज़ल एन्जिन मे इतनी ताकत नहीं थी कि १६० कि० मी० प्र० घ० जितनी तेज़ हवा को चीर कर ५ कि० मी० प्र० घ० से अधिक गति से चल सके। कमलेश खिड़की के काँच से बाहर घूरने लगा। सारे आकाश का तूफान मानो किसी अदृश्य, छोटे-से छेद में से फुफकारता हुआ, सीधा कमलेश की खिड़की पर ही आक्रमण कर रहा था ! हवा मे रेत की धारियाँ पड़ रही थी, फीते उड़ रहे थे, रेलें बह रहे थे—सब उस नन्ही-सी खिड़की के खिलाफ !

चट्टानों के टुकड़े एकाएक नाचते दिखाई देते और उसी तरह एकाएक रेतीले धुंधलके मे छिप जाते… उड़ती चट्टानो का आकार अब बड़ा होता जा रहा था। वे धड़ाम-धड़ाम करती हुई 'जगली' के साथ टकराने लगी थी 'जंगली'

'जंगली' ने अपना चेहरा निरीक्षण-केन्द्र की दिशा में मोड़ लिया, मगर आगे बढ़ने की शक्ति उसमें नहीं थी। डीजल-एन्जिन चक्कों को घुमा तो रहा था, मगर तूफानी हवा किसी अभेद्य भूरी दीवार की तरह सामने अड़ गई थी…चक्के वहीं-वहीं घूम रहे थे… एक-दो बार उस अभेद्य, भूरी दीवार ने 'जंगली' को, घूमते चक्कों के बावजूद, पीछे धकेल दिया। सांय-सांय…हों…होओं…तूफान की गति २०० किलोमिटर प्र० घ० हो चुकी थी।

"कमलेश ? कमलेश ?" नरेश रेडियो पर पुकार रहा था।

"डरो मत, मैं बिलकुल ठीक हूँ," कमलेश ने कहा, "मुझसे बातें मत करवाओ—मैं बहुत व्यस्त हूँ।"

'जंगली' के एन्जिन की आवाज डूबने लगी। क्या एन्जिन बन्द हो रहा है ? या तूफान का बढ़ता शोर उसकी आवाज को अजगर की तरह निगल रहा है ? कमलेश ने ध्यान से सुना—एन्जिन ही बन्द हो रहा था… घूमने चक्कों के बावजूद तूफान 'जंगली' को पीछे धकेल रहा है। यदि चक्के रुक गए तब तो…

"नरेश !" न चाहते हुए भी कमलेश चीख उठा, "एन्जिन मर रहा है !"

पूरे एक सेकन्ड तक नरेश का जवाब न आया। फिर, बहुत ही गम्भीरता से उसने पूछा, "कारण ?"

"रेत— और क्या !" कमलेश बोला, "बियरिंग्स, इन्जेक्टर्स—सबमें रेत भर गई है। २०० किलोमीटर की तेजी के तूफान में और आशा भी क्या रखी जा सकती है ? देखता हूँ; जहाँ तक बढ़ सकूँगा, बढ़ूँगा।'

"फिर ?"

"फिर क्या !" कमलेश ने कहा, 'जंगली' खड़ा रह जाएगा। तूफान में 'जंगली' पीछे की ओर खिसकता रहेगा… या, शायद न भी खिसके। मैं लंगर डाल दूँगा।"

कमलेश ने फिर से अपना ध्यान हत्थों और बटनों पर केन्द्रित कर लिया। इतनी तेज हवा में 'जंगली' को सम्भालने के लिए उसी सावधानी की जरूरत थी, जितनी किसी भयंकर समुद्री तूफान में फंसे जहाज के लिए चाहिए। 'जंगली' जब आगे बढ़ ही न सका तो कमलेश ने उसे घुमा कर उल्टा खड़ा कर दिया। तूफान का जोर अब 'जंगली' के सामने से नहीं, पीछे से पड़ने लगा। जो तूफान 'जंगली' को रोक रहा था, अब उसी ने उसे धक्का देते हुए चला

दिया। 'जंगली' ने तेजी पकड़ी और साथ-साथ उसके एन्जिन ने भी तेजी पकड़ ली। ज्यों ही ऐसा हुआ, कमलेश ने 'जंगली' को फिर से उल्टा घुमा दिया। 'जंगली' फिर से तूफान के आमने-सामने खड़ा हो गया, लेकिन चूँकि उसका एन्जिन गति में आ चुका था, 'जंगली' इस बार रुका नहीं। वह तूफान को चीरता हुआ काफी देर तक आगे चलता रहा। जितना उसे पीछे हटना पड़ा था, उससे कहीं ज्यादा वह आगे चला गया। जब उसका एन्जिन फिर से हांफने और मरने लगा, कमलेश ने यही उपाय फिर आजमाया। ऐन्जिन पुनर्जीवन पा कर 'जंगली' को फिर आगे बढ़ा ले चला।

यही एकमात्र उपाय था ऐसी स्थिति में। चूंकि यह एकमात्र था, यही सर्वश्रेष्ठ था। लगभग एक घण्टे तक 'जंगली' संघर्ष करता रहा। पाँच किलोमीटर चल कर दो किलोमीटर चलना—तीन किलोमीटर पीछे और दो आगे! यह उपाय कमलेश की आशा से अधिक ही कारगर सिद्ध हुआ। 'जंगली' के निर्माता को उसने मन-ही-मन अनेक धन्यवाद दिए। लेकिन इतना डीजल है नहीं कि यों आगे और पीछे दोनों तरफ चलते हुए 'जंगली' निरीक्षण-केन्द्र तक पहुँच सके।

रेत से धुँधला वातावरण और धुँधला हो गया था। उसे भेद रही कमलेश की दृष्टि में एक और भूमि-जहाज़ आया। वह तीव्रता के साथ एक ढलान से नीचे आ रहा था। उसे उसी दिशा में जाना था, जिधर तूफान फुंक रहा था। तूफान के थपेड़े उसे तीर की तरह दूर तक ले गए। 'कितने भाग्यशाली हैं यहाँ के निवासी, 'कमलेश ने सोचा, २१५ किलोमीटर की गति का तूफान इनके लिए सैर-सपाटे का अवसर है!'

उसी समय, रेतीली हवा के आरपार, दूर···बहुत दूर धूसर रंग का गुम्बद-सा दिखाई दिया—धुँधला-धुंधला! निरीक्षण-केन्द्र! ओह, निरीक्षण-केन्द्र नज़र आ रहा था! "चल बच्चे, जल्दी चल!" कमलेश चिल्ला उठा, "नरेश! नरेश! मैं आ रहा हूं! मैं आ पहुंचा! गैरेज खोलने के लिए तैयार रहो!"

और उसी वक्त 'जंगली' का एन्जिन शान्त हो गया। डीज़ल खत्म!

कमलेश ने तुरन्त सभी ब्रेक लगा दिए, ताकि 'जंगली' पीछे की ओर

खिसकने न लगे। जब वह वापस अपनी सीट पर आया, 'जगली' को भद्दी गालियां देता हुआ वह हाफ रहा था। कैसा दुर्भाग्य ! काश, निरीक्षण-केन्द्र नज़र ही न आया होता ! अब जितनी देर कमलेश यहाँ फसा रहेगा, उसकी निगाह बार-बार निरीक्षण-केन्द्र पर पड़ेगी और वह तडप जाएगा। काश, तूफान पीछे से चल रहा होता। डीज़ल खत्म होने पर, तूफान के थपेडो के भरोसे, 'जगली' को निरीक्षण-केन्द्र मे ले जा कर गैरेज मे बन्द किया जा सकता था। लेकिन कितना बचकाना विचार है यह ! तूफान यदि सामने से न बह रहा होता तो फिर समस्या ही क्या थी !

'कमलेश ?" नरेश ने रेडियो पर पुकारा, "अब ?"

'अरे, और क्या !" कमलेश ने अपने स्वर मे प्रसन्नता का स्पर्श देने की कोशिश के साथ कहा, "मैं यही बैठा हूँ ! तूफान सारी जिन्दगी इतना तेज़ थोड़े ही रहेगा। ज्यों ही गति कुछ गिरी, मैं बाहर निकल कर पैदल घर आ जाऊँगा।"

"घर नही, निरीक्षण-केन्द्र !"

दोनो काफी देर तक खामोश रहे।

'जगली' का बारह-टनी राक्षसी शरीर न केवल सिहर रहा था, चट्टानो के उडते टुकडो से बारम्बार टकराता हुआ टकार भी कर रहा था।

मौन अन्ततः कमलेश ने ही भग किया, "मैंने कहा था न, ब्रह्माण्ड की मेरी यह आखिरी खेप है।"

"क्या यह बात तुमने बहुत गम्भीरता से कही थी ?"

"हाँ ! देहरादून के पास मेरे पुश्तैनी खेत है। आज के ज़माने मे भी खेती का अपना आकर्षण है।"

"तुम खेती करोगे ?" नरेश चौक गया यह सुन कर।

"हाँ। क्यों नही—ओह ! यह क्या ?"

मानो कोई अदृश्य हाथ निरीक्षण-केन्द्र को घसीटता हुआ दूर ले जा रहा था ! कमलेश आँखे मलने लगा। यह क्या देख रहा है वह ?

और वह समझ गया। निरीक्षण-केन्द्र दूर नही खिसक रहा, स्वय 'जगली' पीछे हट रहा है ! निरीक्षण-केन्द्र से विपरीत दिशा मे !

अपने-आप कमलेश का हाथ उन बटनों पर चला गया, जिन्हें दबाने से 'जंगली' संकट-काल से बचता था। बटन दबते ही गत्तर-गत्तर भीतर से लम्बे इस्पाती खम्भे 'जंगली' के हर तरफ से बाहर निकल आए। वे खम्भे विशेष स्प्रिंगों द्वारा छोड़े जा कर तीर की तरह चारों दिशाओं में छूटे और सनसनाहट करते हुए ज़मीन पर गिरे। जैसे सभी खम्भों की सनसनाहट एक-साथ हुई, वह 'जंगली' के भीतर भी सुनी जा सकी। कमलेश ने खिड़की से झाँक कर अपनी पूरी सम्भावनाओं से धँसे खम्भों को देख लिया। उसने राहत की साँस ली, क्योंकि 'जंगली' का पहिया खिसकना रुक गया था। कमलेश ने रेत-भरी हवा के उस पार निरीक्षण-केन्द्र को देखना चाहा।

कहाँ था निरीक्षण-केन्द्र? रेत सिर्फ रेत!

"मैंने संकट टाल लिया है।" कमलेश ने जैसे घोषणा की।

"'जंगली' भटका या नहीं?" नरेश ने पूछा।

"फिलहाल तो अटक गया है।" कमलेश ने सिगरेट सुलगाई और गद्देदार सीट पर पीछे टिकता हुआ निढाल हो गया। तनाव और थकान के कारण उसकी रग-रग में पीड़ा हो रही थी। खिड़की में से रेतीले वातावरण में देर-देर तक घूमने के कारण दोनों पुतलियाँ ही नहीं, पलकें और भौंहें भी दुख आई थीं। कमलेश ने आँखें मूंद लीं।

इसके साथ ही उसके कान जैसे अधिक तेज हो उठे। तूफान का शोर यान के इस्पाती बदन में से भीतर रिसता आ रहा था। यान की चिकनी सतह पर मानो किसी खरोंच की तलाश कर रही हों, इस तरह तूफान की उंगलियाँ 'जंगली' के चप्पे-चप्पे को बाहर से छू रही थीं। वे खरोंच ही नहीं, कोई ऐसा छेद भी खोज रही थीं, जिसकी राह भीतर जाकर वे सभी-कुछ ध्वस्त कर दें।

तूफान जब २२२ पर पहुँचा, उस खिड़की का परदा अचानक उड़ गया, जो भीतर की दूषित वायु के निष्कासन के लिए बनाई गई थी। यदि यान के भीतर भी कमलेश शिरस्त्राण पहन कर न बैठा होता तो परदा उड़ते ही जो रेत भीतर आई, उसने उसे अंधा कर दिया होता। धूल-भरी साँसें ले कर उसका दम घुट जाता। पूरे शिरस्त्राण पर रेत चोटें मार रही थी। रेत इतनी सूक्ष्म और तीव्रगामी थी कि उसमें धीमी विद्युत जैसी लहरें महसूस होने लगी

। 'जंगली' के केबिन में एक सूत भी जगह ऐसी न बची, जहाँ रेत न गई।

अब आलू जितने बड़े पत्थरों की वर्षा हो रही थी। रायफल से छूटी लियों की तरह वे 'जंगली' को भेद देना चाहते थे। क्षण-क्षण उनकी राहटें तीव्रतर हो रही थीं। अगर यही हालत रही तो वे जल्द ही इस्पात इन दीवारों के आर-पार निकलने लगेंगे। कमलेश ने सिगरेट का गहरा त लिया, 'तब वे मेरे भी आरपार निकल जाएंगे। पलक झपकते मेरे जिस्म सैकड़ों छिद्र हो जाएंगे और मैं ''कमलेश ने एक और कश लिया।

"कमलेश ? तुम सुरक्षित तो हो ?" नरेश पूछ रहा था।

"वहाँ क्या हाल है ? सब ठीकठाक ?"

"स्थिति विचित्र है।" नरेश ने बताया, "केन्द्र के पूरे ढाँचे में 'सहानुभूति-म्पन' शुरू हो चुका है। नींव पर बहुत अधिक जोर पड़ रहा है।"

"और ऐसे भयंकर ग्रह पर हमारे साथी ईंधन-अड्डा बनाना चाहते हैं ! ह पागलपन है।" कमलेश ने कहा।

"लेकिन इसके अलावा और चारा भी क्या है ? तुम सारी स्थिति अच्छी रह जानते हो। 'दक्षिणी चौथ पट्ट' और 'एगार्सा-तृतीय' के बीच यही कमात्र ग्रह है जो ठोस है। अन्य सभी ग्रह गैस के बने हुए हैं।"

"लेकिन यहाँ से तो बेहतर है कि हम ब्रह्माण्ड में नकली प्लेटफार्म-ग्र थापित कर दें।"

"यह मामला कितना खर्चीला "

"ऐसी की तैसी तुम्हारी ! तुम उनकी तरफदारी करते हो ? वे हमारी जान लेना चाहते हैं ! प्लेटफार्म-ग्रह क्या हमें सस्ता नहीं पड़ेगा ? 'सेरेल्ला जैसे ग्रह पर ईंधन-अड्डे की सुरक्षा बनाए रखने में क्या कम खर्च आएगा उनका दिमाग खराब है।" यहाँ कमलेश को जरा रुक कर, गहराई से सांसें ए थूकना पड़ा। शिरस्त्राण के भीतर भी उसके मुँह में रेत भर गई थी थूकने के लिए उसे शिरस्त्राण में से मुँह बाहर निकालना पड़ा। अलबत्ता सुरप की तरह रेत का सुरीला भजन "सुरर्र उसने शिरस्त्राण पूरा पहन लिया जब बन्द केबिन में यह हाल है, 'जंगली' के बाहर तो"

कमलेश ने पूछा, "केन्द्र के बाहर कितने 'सेरेल्ला'-निवासी हैं इस वक्त?"

" 'छप्पर' में यहाँ कोई पन्द्रह के करीब बैठे हैं।"

"उनका इरादा हमला करना जैसा तो नहीं लग रहा?"

"अब तक नहीं, लेकिन उनका व्यवहार विचित्र है।"

"विचित्र ?"

"वे अजीबोगरीब ढंग से अपने 'संवेदक' हिला रहे हैं। शायद वे इस मौसम से बहुत प्रसन्न हैं। उन पर निगाह जाते ही मैं अपने को बीमार-सा महसूस करता हूँ।"

"मत देखो कम्बख्तों को!" कमलेश ने कहा, "और तुम तो, अच्छा है कि उनकी भाषा भी नहीं समझते। भूलकर भी 'छप्पर' में न चले जाना। मैं नहीं चाहता कि अपनी वापसी पर मैं तुम्हारी धज्जियाँ उड़ी हुई देखूँ!" यहाँ कमलेश कुछ रुका, फिर बोला, "वक्त में वापिस आ सकूँ।"

"तुम आओगे, जरूर आओगे।" नरेश ने कहा।

"मुझे भी यही लगता है। मैं जरूर वापस आऊँगा। मैं·मैं·ओह! बाप रे!"

"क्यों? क्या हुआ?"

"एक चट्टान उड़ती हुई आ रही है। फिर बात करूँगा।"

कमलेश ने अपना सारा ध्यान उस चट्टान पर जमा दिया, जो धूल और रेत से सनी हवा में एक ऐसे धब्बे की तरह लग रही थी, जो क्रमशः फूलता जा रहा था। सफर के रास्ते पिछले घोर ब्रेक लगने के बाद 'जंगली' हिलने की स्थिति में नहीं था। चट्टान सीधी 'जंगली' की ओर झपट रही थी। वायु गति-मापक दर्शा रहा था—२४५ किलोमीटर प्रति घण्टा···नहीं, असम्भव! कोई तूफान इतना तेज नहीं हो सकता!···लेकिन वा० ग० ना० स्पष्ट दर्शा रहा था—२४५!

झपटती चट्टान का धब्बा किसी इमारत जितना बड़ा हो चुका था। व और-और फूल रहा था। नहीं! 'इधर नहीं!' कमलेश इस तरह बुदबुदाया मानो वह धब्बा सचमुच उसकी आवाज सुन सकता हो, सचमुच उस धब्बे के सामने प्रार्थना की जा सकती हो···चट्टान सीधे इधर ही आ रही थी···कमलेश

उंगलियाँ काँपने लगी ''कितने सारे बटन हैं! कितने सारे हत्थे हैं! किसे ाए? किसे झटका दे? चट्टान इतनी सीधी लकीर में लुढ़क रही थी, मानो ; लकीर किसी गणितज्ञ ने खींची हो।

भय और आतंक से कराह कर कमलेश ने वह बटन दबा ही दिया, जो ार के दो सबसे लम्बे रस्सो को वापस समेटने के लिए था। सभी रस्सों को ा-साथ समेट लेने पर, तूफान में उड़कर कहीं भी जा टकराने और ध्वस्त ा जाने का खतरा था, अतः दो ही रस्से समेट कर कमलेश ने 'जंगली' के ब्रेक ोल दिए। 'जंगली' में जबर्दस्त झटका लगा। चट्टान उसी तरह झपट रही ी, धब्बा उसी तरह फूल रहा था'''जंगली' खिसक गया। तूफान के थपेड़ो ब्रेक खुलते ही उसे ५० किलोमीटर की तेजी से घसीटना शुरू कर दिया।

लेकिन झपटती चट्टान की गति ५० कि० मी० से कई गुना अधिक थी। ट रही आँखों से कमलेश ने देखा, 'जंगली' और चट्टान का फासला निरंतर म हो रहा है'''तूफान के थपेड़े 'जंगली' को खिसका तो रहे थे, मगर दिशा ही थी, जो चट्टान के झपटने की दिशा थी। क्या अंत आ पहुंचा है? क्या ाक्षात् मृत्यु अट्टहास कर रही है?

कमलेश ने स्टियरिंग व्हील को अधिकतम शक्ति से बाई ओर मरोड़ देया। फँसे हुए इस्पाती रस्सों के कारण 'जंगली' के लिए अपनी दिशा में ोड़ा-सा परिवर्तन करना भी अत्यधिक कठिन था'''चट्टान का धब्बा इतना बड़ा ो गया था कि आकाश आधे से ज्यादा लुप्त हो चुका था' चट्टान आई-आई-रह-आई'''गर्जना'''आँधियाँ'''"हट! किनारे हट!" कमलेश काँपता हुआ चीख रहा था, स्टियरिंग व्हील पर उसने अपना सारा शरीर झुका दिया' काला धब्बा 'जंगली' पर पूरी तरह छा गया'''कमलेश ने आँखें बन्द कर लीं'''

जब उसने आँखें खोलीं, चट्टान जा चुकी थी। कमलेश ने अविश्वास से देखा, चट्टान का जो धब्बा 'जंगली' के सामने उभरा हुआ फूल रहा था, वही धब्बा अब 'जंगली' के पीछे सरक कर सिकुड़ने लगा था'''कमलेश ने सोचा, 'शायद मैं पहला मनुष्य हूँ, जिसने बारह टन के मरे हुए यान को केवल स्टियरिंग व्हील के झटकों से हटा दिया!'

'जंगली' उस भयावह चट्टान से उसी तरह आतंकित हो गया था, जिस तरह

रहम कमलेश। 'जगली' कांप रहा था—गनगुब! झपटती चट्टान क
दबाव…ओह! लगभग चौथाई मिनट तक 'जगली' की कलाबाजी न रुक
फिर वह थमा। गोल घूमने छहां नहीं पर स्थिर हो गया।

"कमलेश! कमलेश! क्या तुम जिन्दा हो?" नरेश चीख र

"हां!" कमलेश ने कहा। आभार से उसका गला भर आया था
के प्रति था यह आभार? स्टियरिंग व्हील के प्रति? लंगर के उन
के प्रति, जिन्होंने वापस सिमटने में अद्भुत तीव्रता दिखाई थी? या…
तूफान के प्रति, जिसने लंगर कमजोर पड़ते ही यान को ५० किलोमी
गति से पीछे हटाना शुरू कर दिया था?

पीछे हटता यान! ओह! वह अब भी पीछे हट रहा था! रेडि
कमलेश की आवाज़ थर्रा उठी, "नरेश! 'जगली' का भाग लगर उस
है। रस्से घिसट रहे हैं। मैं तूफान के साथ उड़ा जा रहा हूँ।'

"होश मे रहो, कमलेश, घबराओ मत…" नरेश अधैर्य मे बोला, "
रस्से तुमने समेटे हैं, उन्हें खोल दो।"

"खोल दिये हैं, मगर 'जगली' गति मे आ चुका है। वह रुक नहीं
मैं… मैं कह नहीं सकता…"

"तुम कहां हो? मेरा मतलब है, तूफान के साथ घिसटने के लिए
तुम्हारे पास पर्याप्त मैदान है?"

"नहीं! करीब २० किलोमीटर दूर जो पहाड़ियां हैं, शायद मैं
टकरा जाऊंगा…'जगली' जिस तेजी से भाग रहा है, उस हिसाब से
पहाड़ियां आने मे देर नहीं है…"

"ब्रेक लगा दो, पूरी ताकत से!" रेडियो पर नरेश चिल्ला
'जंगली' को मोड़ो। अगर जरा-सा भी मोड़ दोगे तो… सुन रहे हो न?
सा भी मोड़ दोगे तो…हां, हां…उतने से ही बहुत फर्क पड़ेगा…पहाड़ि
बगल से निकल जाने की कोशिश करो। नरवस मत होना…तुम्हें
वापस आना है… कोशिश तो करो…"

और कमलेश की आंखों मे दूर से उभर रहे धब्बों की एक लम्बी
फैल जा रही थी। चट्टानें! पहाड़ियां!… वे आ गई थी! ओह! कम

ने कस कर ब्रेक लगा दिए। घबराहट में ब्रेकों को जैसे वह भूल ही गया था बहुत समय रहते नरेश ने याद दिलाया ! ब्रेक और टायर रिरिया उठे। घर्षण के कारण ब्रेक-लाइनिंग से धुआँ उठने लगा। मगर...

मगर 'जंगली' उसी तरह घिसट रहा था। तूफान को जैसे पता ही न चला कि ब्रेक भी लगाए गए हैं ! तूफान की गति २८० किलोमीटर प्र० घं० हो चुकी थी। लंगर के इस्पाती रस्से साथ-साथ घिसट न रहे होते तो 'जंगली' भी इसी भयंकर गति से लुढ़क रहा होता। रस्सों के ही कारण अभी 'जंगली' की गति ६५ कि० मी० से ज्यादा नहीं हुई थी।

लेकिन यह गति निरन्तर बढ़ रही थी।

"यहाँ तूफान की तेजी २८५ तक पहुंच चुकी है।" नरेश ने बताया, "केन्द्र की एक-एक दीवार काँप रही है। चट्टानों के टुकड़े खम्बों के जंगल को चकनाचूर करने पर तुले हुए हैं। मुझे डर है कि थोड़ी ही देर में सारे खम्बे लेट जाएंगे और ये उड़ती चट्टानें...उफ !...सारे केन्द्र को ये उड़ा ले जाएंगी...इसकी धज्जियाँ उड़ा देंगी..."

"चुप रहो !" कमलेश झल्ला उठा, "मेरी अपनी मुसीबतें कम नहीं !"

"सुनो कमलेश...अगर मैं न रहूं, तो भी...तो भी तुम...धीरज मत..."

इसके बाद कुछ भी सुनाई न दिया। रेडियो मर गया था।

'जंगली' की गति बढ़कर ७१ कि० मी० प्र० घ० हो चुकी थी। पहाड़ियों के वे धब्बे फूल कर और स्पष्ट हो गए थे।

"आओ पहाड़ियो, आओ, मुझे खा जाओ !" कमलेश मुट्ठियाँ भींचता हुआ चिल्लाया, "—अगर खा सको !"—और इसके साथ ही उसने अपने बचाव का आखिरी बटन दबा दिया।

इस्पात का वह रस्सा, जो बटन दबते ही तूफान में उठ कर फड़फड़ाने लगा था, लम्बाई में ज्यादा नहीं था, लेकिन वह अभी रस्सों से मोटा और मजबूत था। वजन में भी वह सबसे अधिक था। कई सेकण्ड तक तूफान में फड़फड़ाने के बाद वह जमीन में आ लगा और घिसटने लगा। उसके कारण 'जंगली' की गति घटकर ४५ पर आ गई...लेकिन ४५ का आँकड़ा स्थिर नहीं था...४६...४७...४६...५१...५३...

पहाड़ियों के धब्बे फूल रहे थे…

'कैसा रहे, अगर मस्तूल चढ़ा दिया जाए ?' कमलेश ने सोचा । ज
गली' की गति घटाना ही एक जबर्दस्त समस्या थी, मस्तूल चढ़ा कर इस
यंकर तूफान में 'जंगली' को और तेजी से भगाना…क्या यह आत्म-हत्या न
ी ? 'जंगली' इतने जोर से पहाड़ियों के साथ टकराएगा कि उसके एक
क का पता नहीं चलेगा ।

हाँ, यह आत्म-हत्या ही थी—अगर उपाय काम न करे ।

और यह बचाव का एकमात्र उपाय भी था । वैसे भी 'जंगली' सीधा प
ड़ियों की ओर जा ही रहा है…स्टियरिंग व्हील पर मारे जा रहे झटके उस
दिशा बिल्कुल नहीं बदल पा रहे…मस्तूल चढ़ाया जाए या न जाए, 'जंग
पहाड़ियों से टकरा कर रहेगा ।

लेकिन यदि मस्तूल चढ़ा दिया जाए…

चढ़े हुए मस्तूल को कमलेश अपनी कुर्सी में बैठा हुआ नियन्त्रित
सकता है । पूरी तरह चढ़ने के बाद कमलेश मस्तूल को तिरछा करने लगेगा
तूफान की हवा इस तिरछेपन के कारण 'जंगली' को सीधी लीक के बजाए नि
कोण में घसीटने लगेगी…'जंगली' की दिशा बदल जाएगी…कमलेश मस्तूल
और-और तिरछा करेगा…'जंगली' की दिशा, सम्भव है, इतनी बदल जाए
वह पहाड़ियों से कन्नी काट कर, बगल से गुजरता हुआ, भयंकर भिड़न्त
अपनी रक्षा कर ले…

लेकिन यदि तिरछी घिसटन के बावजूद 'जंगली' का रास्ता मस्तूल
इतना परिवर्तित न किया कि वह पहाड़ियों की करवट से होता हुआ गु
सके—तो ? तो क्या ! धड़ाम ! भिड़न्त ! मौत का एक सूक्ष्म क्षण
चीत्कार का एक नन्हा-सा आभास—और सब लुप्त !…और, वैसे भी,
लुप्त होने जा ही रहा है…क्यों न यह आखिरी कोशिश कर ली जाए ?

एक छोटा किन्तु मजबूत इस्पाती खम्बा 'जंगली' के ऊपर सींग की
निकल आया । विद्युत-चुम्बकीय प्रबन्ध के अनुसार अपने-आप इस खम्बे में
बाहें निकलीं और उन पर एक विशेष धातु-वस्त्र का बना मस्तूल फैल गय
इसके साथ ही 'जंगली' को इतने जोर का झटका लगा, मानो इसी वक्त उ

पर्ते अलग-अलग हो जाएँगी ! कल्पनातीत भयावहता के साथ 'जंगली' पहाड़ियों की ओर झपटने लगा···

तूफ़ान २८५ की गति पर था···

कमलेश की भुजाओं की एक-एक रग अपनी शक्ति को घनीभूत करके तनी हुई थी···कमलेश अपने निचले होंठ को दाँतों में दबा कर पूरा ज़ोर लगा रहा था—मस्तूल को तिरछा करने और तिरछा ही बनाए रखने के लिए···मस्तूल को तिरछा-सीधा करने का हत्था कमलेश के तन और मन को हचमचाए दे रहा था···इस्पात का बना होने पर भी 'जंगली' जैसे चरमरा उठा था। मस्तूल तिरछा होते ही 'जंगली' के एक तरफ़ के तीनों चक्के झटका मार कर अधर उठ गए—'जंगली' दूसरी तरफ़ के तीन चक्कों के ही आधार पर टेढ़ा होकर भाग रहा था। यदि मस्तूल को ज़रा भी और तिरछा किया गया तो तूफ़ान में 'जंगली' उलट जाएगा···खिलौने की तरह बारह टन का यह राक्षस बार-बार उछलेगा-गिरेगा···कमलेश अपने केबिन की दीवारों से इस बुरी तरह टकराएगा कि जिन्दा बचने का सवाल ही नहीं उठता···

लेकिन यदि मस्तूल को और-और तिरछा नहीं किया जाता तो···उहुऊहुऊ···गा···गा···हाआ···हाआहा···यह तूफ़ान···यह 'जंगली' को सीधा ले जाकर पहाड़ियों पर पटक देगा···

दोनों ही स्थितियों में मौत !

लेकिन तो भी कमलेश के हाथ से मस्तूल-नियंत्रण का वह हत्था छूट नहीं रहा था···केबिन में घुमड़ती धूल, रेत···पसीना···घबराहट···कमलेश का साहस पिघल रहा है···कमलेश पिघल रहा है··· यह बहता हुआ पसीना स्वयं कमलेश है···

पहाड़ियाँ नज़दीक···बिल्कुल नज़दीक आ चुकी हैं···अब टक्कर होने ही वाली है—

धड़ड़ड़ड़ ! टण-ण-ण···

भयंकर झटका ! कमलेश अपनी सीट से उछल गया। केबिन से उसका सिर इतनी ज़ोर से टकराया कि उसी क्षण खून का रेला मस्तक पर उभर कर नीचे रेंगने लगा···शून्य ! सब शून्य ! ब्रह्माण्ड के शून्य की ही तरह···

धूम्र में डूबते-डूबते भी कमलेश की सूक्ष्मग्राही दृष्टि देख रही थी—'जंगली' के इस्पाती शरीर में जगह-जगह छेद हो गये हैं—रेत, धूल, कंकड़ और चट्टानों के टुकड़े भीतर घुस कर घुमड़ उठे हैं । वायु-गति-मापक दर्शा रहा है—२१० किलोमीटर प्रति घण्टा ।

●●

कमलेश ने आँखें खोलीं । क्या सचमुच उसने आँखें खोली थीं ? उसने अविश्वास से पलकों को झपका कर देखा । पलकें झपक सकती थीं । उसने पलकों को छूकर भी देखा । पलकें छूई जा सकती थीं । तो क्या वह जिन्दा है ? लेकिन यह कैसे हो सकता है ? पहाड़ियों के साथ 'जंगली' की टक्कर होने के बाद भी···लेकिन सचमुच वह जिन्दा था । फर्श पर—यह 'जंगली' का ही कांपता फर्श था—कमलेश उस पर अस्त-व्यस्त पड़ा हुआ । तो क्या···वह केवल बेहोश हो गया था ? लगता यही है । वह उठ बैठा । शिरस्त्राण के भीतर उसे जो चोट लगी थी, उससे अभी तक खून का रिसना जारी था । शिरस्त्राण खोलकर चोट को हाथ से छूने का साहस वह न कर सका । यही क्या कम था कि शिरस्त्राण सही-सला-मत बच गया था ! उसके भीतर ओषजन का प्रवाह भी ठीक था···

कमलेश उठ बैठा···वह खड़ा होना चाहता था, मगर चक्कर आ गए । प्राय. आधे मिनट बाद वह उठकर चल सकने योग्य शक्ति सजो सका । तो—पहाड़ियो से टकराहट नहीं हुई । याने—क्या, पहाड़ियो से कन्नी काटता हुआ 'जंगली' आगे बढ़ गया है ? पहाड़ियाँ पीछे रह गई हैं ? लेकिन कमलेश ने स्वयं अपनी आँखों से स्पष्ट देखा था, 'जंगली' और पहाड़ियो की टकराहट किसी हालत में नही बचाई जा सकती थी । फिर क्या चमत्कार हुआ ? कहीं ऐसा तो नही कि ये सारे अहसास कमलेश के नहीं, कमलेश के प्रेत के हैं ? तो—प्रेत सचमुच होते हैं ! कमलेश मुस्कराया—प्रेत मुस्करा भी सकते हैं !

लेकिन नहीं, वह प्रेत नहीं, स्वयं कमलेश था । उसके वैज्ञानिक मस्तिष्क को समझते देर न लगी कि जो कुछ वह देख रहा है, वह सपना या प्रेत-लीला नही है । पहाड़ियों से भिड़न्त नही हुई थी ।

और पहाड़ियाँ पीछे भी नहीं छूटी थीं । कितने आश्चर्य की बात कि वे सामने ही थीं ! तो क्या तूफान रुक गया है ? क्या 'जंगली' लाचारी में झपट

नहीं रहा है ?

नहीं। तूफान रुका नहीं था। कमलेश ने खिड़की से बाहर देखा—रेत और धूल उसी तरह फुफकार रही थी। 'जंगली' के शरीर में जगह-जगह जो छेद हो गये थे, उनमें से केबिन में घुस आई रेत और धूल उसी तरह घुमड़ रही थी। 'जंगली' का पूरा ढांचा भय से उसी तरह काँपे जा रहा था…

कमलेश बच गया था।

कम-से-कम, इस वक्त तो वह बच। हुआ था ही।

उसने आँखें सिकोड़ कर खिड़की के काँच पर अपना थका हुआ चेहरा टिका दिया। काँच का जो हिस्सा मस्तक के पास था, वहाँ खून लग गया, लेकिन कमलेश का ध्यान इस पर नहीं था। उसकी तो सारी चेतना बाहर के उस अनोखे दृश्य पर लगी हुई थी, जो अपनी अति-नाटकीयता के कारण असम्भव ही नहीं, कुछ-कुछ…बेवकूफी-भरा लग रहा था…जो भी हो, कमलेश बच गया था…इस वक्त तो बचा हुआ था ही…लेकिन वह किसी भी क्षण मर सकता था…

वह अधिक समय तक बेहोश नहीं रहा है। दो-चार मिनट ही रहा होगा, क्योंकि तूफान की सारी स्थिति ज्यों-की-त्यों है। परिवर्तन आया है लंगर के केवल एक रस्से में। तूफान में फड़फड़ाने के कारण रस्से में गठान-सी पड़ गई होगी। यह गठान किसी दरार में फंस कर अटक गई है…'जंगली' को अचानक जो भयंकर शोर के साथ झटका लगा था, वह इसी अटकने के कारण था। 'जंगली' के लंगर का एक-एक रस्सा खनक उठा था। कई रस्से तो उछल-उछल कर स्वयं 'जंगली' पर आ गिरे थे। भयंकर शोर इसी का था।

लेकिन 'जंगली' पहाड़ियों के साथ टकराकर ध्वस्त होने से बच गया था। वह तभी तक बचा हुआ है, जब तक रस्से की गठान दरार में फंसी पड़ी है। रस्सा टूट सकता है। गठान खुल सकती है। दरार का वह हिस्सा टूट सकता है, जिसमें गठान को अटकने की जगह मिली है। स्वयं 'जंगली' इस रस्से में छिटक कर अलग हो सकता है…जब तक इसमें से कुछ नहीं होता, तभी तक कमलेश जिन्दा है! दरार से लेकर 'जंगली' तक खिंचा हुआ यह जो जीवन-रक्षक रस्सा है, वह तूफान की सिसकारियों के साथ, किसी गिटार के तार की

तरह भयंकर हो रहा है ! कैसी भयंकर गति में भी सौंदर्य-बोध ! कमलेश मुस्कराया। सामने के पहाड़ पानी मुस्कानों की संख्या में एक-दो की बढ़ोतरी भी हो गई तो बुराई क्या है ? 'जंगली' मापने की इन पहाड़ियों से टकराता तब कमलेश की हालत उस टूथ-पेस्ट जैसी हो जाएगी, जिसकी ट्यूब अकस्मात् पिचक गई हो···

पैमाना बढ़ रहा है—तूफान की गति ३१० तक पहुंच रही है ! पैमाना दीवाना है !

कमलेश ने आँखें बन्द कर लीं। वे जल रही थीं। ३१० किलोमीटर प्रति घण्टा ! ऐसा तूफान 'सेरेल्ला' पर ही उठ सकता है। क्या पृथ्वी-निवासियों को अनुमान भी होगा कि···गहरी सांस—और कमलेश ने आँखें खोल दीं। उसने फिर से वायु-गति-मापक की ओर देखा।

२६६···

२६६ ???

हाँ, २६६। अभी यह गति ३१० थी। क्या तूफान धीमा पड़ रहा है ? लेकिन इस वक्त भी यह कितना तेज है ! गिटार के तार की तरह तने हुए और भन्नाते हुए उस इस्पाती रस्से के छोर पर बंधा 'जंगली' बार-बार उछल कर गिर रहा था···पैमाने का कांटा कुछ और नीचे आया···२६५··· २६०···२८५···

२८५ पर आते-आते 'जंगली' का उछल-उछल कर पछाड़ें खाना रुक गया। तने हुए इस्पाती रस्से के छोर से लगा हुआ, वह, किसी तस्वीर की तरह स्थिर हो गया। २८०···ओह···२७०···सचमुच ! ओह, सचमुच !··· २६०···

जब कांटा १८३ से भी नीचे झुकने लगा तो—कितनी राहत ! थका हुआ कमलेश न जाने कब सो गया। क्या वह सो गया था ? या वह स्थिति आधी बेहोशी की थी ? जो भी हो, कमलेश वहाँ था और कमलेश वहाँ होकर भि नहीं था···

●●

तूफान बीकुरल शांत हो जाने के बाद 'सेरेल्ला'-निवासियों के दो भूमि-

जहाज 'जंगली' के पास आये। विशेष लताओं में से निकाले गये रेशों द्वारा बने रस्सों से 'जंगली' को बाँधकर उन्होंने उस मरे हुए राक्षस को घसीटकर निरीक्षण-केन्द्र तक पहुँचा दिया। रेशों से बने वे रस्से इन्सानी रस्सों से किसी तरह कम नहीं थे।

'सेरेल्दा'-निवासी चूँकि निरीक्षण-केन्द्र के भीतर की गर्म हवा में नहीं जा सकते थे, उन्होंने कमलेश को 'मिलन-छप्पर' में छोड़ दिया। नरेश उसे वहाँ से उठाकर भीतर ले गया। बिस्तर पर लिटाने के बाद उसने मुस्कराते हुए कहा, "ज्यादा चोट नहीं आई। एक चोट सिर पर। दूसरी मुँह पर। तुम्हारे दो दाँत टूट गए हैं।"

कमलेश के होठों पर भी मुस्कान उभर आई, लेकिन जवाब में वह कुछ न कह सका।

"गहरी चोट न सही, मगर तुम्हारे जिस्म का कोई हिस्सा ऐसा नहीं है, जो खुरच न गया हो!" नरेश ने उसके कपड़े बदलते समय कहा।

"बहरहाल···" कमलेश इतना ही बोल सका। क्या उसका यह शब्द निरर्थक नहीं था।

"सब्जी का हमारा जंगल बिल्कुल सपाट हो गया है।" नरेश ने ही बात आगे चलाई, "दो चट्टानें केन्द्र की दीवारों पर सीधी आ गिरी थीं। अगर एक भी चट्टान और आ जाती तो ··वारे न्यारे थे! मैंने जाँच की जाँच कर ली है। उसे बहुत नुकसान पहुँचा है। सब्जी का सारा जंगल फिर से तैयार करना होगा। नींव भी तुरन्त मजबूत कर लेनी होगी। ये दो काम पूरे हो सकें, यदि इससे पहले ऐसा ही एक और तूफान आ गया तो···" नरेश ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया। उसे पूरा करने की जरूरत भी क्या थी! कमलेश ने थूक निगला।

"इन आठ महीनों में हमारा यह अनुभव···" कमलेश ने मौन भंग किया, "···सबसे भयंकर रहा—अभी चार महीने और हैं! उसके बाद ही हमें पृथ्वी पर ले जाने वाला यान आएगा···और···"

"यान जरूर आएगा।" नरेश बुदबुदा उठा।

"क्यों नहीं!" कमलेश ने कहा,—"और हम जरूर जाएंगे।"

र ?"

कमलेश ने उत्तर दिया, "क्योंकि कहता है, "बहुत भयंकर तूफान आने वाले हैं !···और अभी जो तूफान आया था, वह केवल एक झोंका था !"

दोनों युवक एक-दूसरे को घूरते रह गये।

बाहर हवा फिर तेज होने लगी थी······

●●

काटाहट ने कहा, 'दूर रहो'!

पृथ्वी पर एक नगर की मौत का फ़ैसला सुना दिया गया। उस नगर क
नाम था काटाहट।

किन्तु वह नगर पृथ्वी पर नही था। वह था मगल ग्रह पर—कित
सुदूर!

और वह फ़ैसला पत्थर की लकीर था। उसे कोई टाल नही सकता थ
उसे सुनाया था अल्पव्यय-स्थापना-केन्द्र ने। आज तक अस्थाके का कोई फ़ैसल
ऐसा नही रहा था कि जिस पर अमल न हुआ हो।

अस्थाके का मुख्य कार्यालय था नई दिल्ली में। वहाँ नन्हे-नन्हे हज़ारों क
चमचमाते, सकरे रास्तों से होकर, सगणकों के बीच आए-गए थे। हर क
पर एक नगर था। संगणको ने उन्हें पढ़ा, समझा। उन की छटनी की। क
को पुनर्विचार के लिए अन्य विभागो मे प्रेषित किया। अधिकाश कार्ड पह
छटनी मे ही खारिज हो गए। छटनी करने वाला मुख्य सगणक कोई विद्
मस्तिष्क नही था। मूलतः वह एक जबरदस्त फाइलिंग-प्रणाली ही था, जो
मात्र मे लाखों कार्डों या फाइलों के बीच चुनाव कर सकता था। इस का अर्थ
नहीं कि किसी भी विद्युत-मस्तिष्क ने उस संगणक की सहायता नहीं की
सहायता के लिए एक विद्युत-मस्तिष्क अवश्य नत्थी कर दिया गया था उ
साथ, किन्तु उस मस्तिष्क ने केवल कारकूनी सहायता ही दी—जो निप
प्राप्त हुआ, उसकी ओर से उस मस्तिष्क ने पूर्ण तटस्थता बरती। विद्
मस्तिष्क ने उक्त सगणक से साफ-साफ कह दिया था, "तुम अपना काम क
और मैं अपना। मैं सिर्फ छटनी मे सहायता दूँगा। समझे? किसी भी सल
सलाह की आशा न रखना।"

कार्डों के आने-जाने के सकरे रास्तों पर अनेकानेक बल्ब जल-बुझ रहे
कार्डों पर जो छिद्र-भाषा लिखी गई थी, उसे पढ़ना मनुष्य के लिए सम्भव

था, किन्तु संगणक को तो उसी भाषा में रोज पाला पड़ता था। सही क
याने कि सही नगर का चुनाव करने में संगणक को काफी समय लगा।
अर्थ यह नहीं कि संगणक ने काफी समय व्यर्थ गंवाया। वास्तव में उस
एक क्षण के लाखवें करोड़ों हिस्से का भी एकदम सही-सही इस्तेमाल
ज्यों-ज्यों समय बीता, कार्डों की संख्या कम होती गई, किन्तु छंटनी की
तेजी न आ सकी। कार्ड भले ही कम थे, किन्तु अब उन पर विचार क
लिए अधिक समय की आवश्यकता थी। कई अवसर ऐसे भी आए, जब
पैंतीस कार्ड बार-बार पुनर्विचार के लिए वापस भेजे गए, किन्तु उ
किसी भी एक को अलग से छांटा न जा सका। अन्ततः केवल ग्यारह
बच गए—ग्यारह नगर! ऊपरी तौर पर यही महसूस हुआ कि उन ग्या
से चाहे किसी का भी चुनाव कर लिया जाए—समस्या हल हो ज
किन्तु इस तरह के अललटप निर्णय लेना संगणकों की नीति नहीं हुआ क
छटनी प्रणाली को स्पष्ट आदेश दिया गया था कि ग्यारह नहीं, बल्कि ए
सिर्फ एक कार्ड—चुना जाना है। कोई ऐसा कार्ड कि जो अस्त्याके की सर्व
पूरी करता हो। छटनी प्रणाली को अपनी असफलता साफ दिखाई देने लगी
ग्यारह कार्ड उसे एक-जैसे लग रहे थे। अन्ततः उसने विद्युत-मस्तिष्क से
"सलाह न देने की जिद छोड़ो। बताओ कि कौन-सा कार्ड सर्वाधिक उप
है।"

विद्युत-मस्तिष्क ने क्षण-दो-क्षण के विचार के बाद बताया, "यदि
कार्ड एक जैसी स्थितियों के हैं, तो कोई ऐसा कार्ड चुनो, जो सबसे
आबादी सूचित करता हो।

और काठाहट का चुनाव हो गया।

केवल चार सेकण्ड के भीतर, निदेशक के कार्यालय में रखी तार की
टोकरी में वह कार्ड आ गिरा। निदेशक ने कार्ड को उठा कर पढ़ा। उस
सिर्फ एक शब्द अंकित था—उस नगर का नाम।

'अरे!' वह बोल उठा, "काठाहट! हद हो गई! सोचा भी किसने था

जिस क्षण काठाहट का चुनाव हुआ, उसी क्षण काठाहट लगभग
था। अस्त्याके के सभी निर्णय इतने अटल होते थे कि निर्णय लिए जाने

फिर ग्रमल होने के बीच जैसे कोई ग्रन्तर ही नहीं था।

काटाहट-निवासियों ने उस निर्णय को रेडियो पर सुना, दूरदर्शन पर देखा, ग्रखबारों में पढ़ा। उन्होंने आपस में उस निर्णय पर चर्चा की। यकीन ही नहीं था उन्हें। ग्रन्ततः वे उच्च-ग्रधिकारियों के पास पहुंचे, ताकि जान सकें कि सच क्या है ग्रौर झूठ क्या।

नगरपति ने स्वयं को एक ग्रजीब स्थिति में पाया। काटाहट की मौत का ग्रर्थ था कि उसका नगरपति अपनी कुर्सी छोड़ दे, ग्रपना घर छोड़ दे, ग्रपने पड़ोसियों को छोड़ दे ग्रौर ग्रपने जाने-पहचाने रास्तों को हमेशा के लिए भूल जाए। साथ-साथ हमेशा के लिए वह यह ग्राशा भी छोड़ दे कि भविष्य में वह वहीं का भी नगरपति पुनः बन सकेगा। ये सब बड़ी कठोर बातें थीं, लेकिन दूसरी ग्रोर, एक सरकारी नौकर होने के नाते, उसका यह भी कर्त्तव्य था कि काटाहट के सभी निवासियों से वह उस सरकारी फैसले पर ग्रमल कराए और किसी भी व्यक्ति को हिंसा पर उतारू न होने दे। तसल्ली पाने के लिए काटाहट-निवासी उसे घेर कर, भाँति-भाँति के प्रश्न पूछ रहे थे, जबकि उसे केवल उतनी ही जानकारी थी, जितनी कि अन्य सभी निवासियों को। कोई भी नई बात वह उन्हें बता नहीं सकता था।

किन्तु वह ग्रन्ततः एक राजनीतिज्ञ था। राजनीतिज्ञों की तरह ही उसने सोचना शुरू कर दिया। उसने ग्रम्याके के फैसले को मूर्खतापूर्ण घोषित किया, किन्तु साथ-साथ यह भी कह दिया कि फैसले को फैसले के ही रूप में देखना चाहिए। मन-ही-मन वह दुखी था कि काटाहट का त्याग करने के एवज में सरकार की ओर से सभी निवासियों को क्या दिया जाएगा, इसकी कोई सूचना फैसले के साथ नत्थी नहीं की गई थी। यदि ऐसी सूचना फैसले के साथ ही आ जाती, तो काटाहट-निवासियों में जो रोष की लहर फैल गई थी, उसकी उग्रता निश्चय ही काफी कम होती।

मगर ग्रम्याके ने दूरदर्शिता से काम नहीं लिया था। केवल एक शब्द प्रेषित किया था उसने—मौत! काटाहट की मौत!

"मंगल पर स्थापित मानवीय संस्थानों के सुचारु संचालन के लिए यह आवश्यक हो गया है कि···"नगरपति ने कहना शुरू किया, किन्तु शुरू करते ही उसे महसूस हुआ कि वह शब्दों का सही चुनाव नहीं कर पाया है। उसके शब्दों में आत्मीयता नहीं थी। थी केवल सरकारी औपचारिकता—मशीनी। भाषण-मंच के चारों ओर घिर आई भीड़ पर उसने एक क्रोध-भरी निगाह डाली। उस भीड़ के बीच सहसा उसने अपने को एक अजनबी महसूस किया। वह जानता था कि यह भीड़ हिंसा पर उतारू नहीं होगी, किन्तु अपना आवेश शान्त करने के लिए भीड़ कोई और उपाय अवश्य निकालेगी। शायद भीड़ नगरपति की खिल्ली उड़ाना चाहे—बावजूद इस जानकारी के कि नगरपति का कोई कसूर नहीं है।

"साथियो!" उसने अपने रुके हुए शब्दों को पुन: जारी किया, "मुझे बहुत दुःख है कि हमें काटाहट का हमेशा के लिए त्याग कर देना है, किन्तु··· दूसरी ओर, हमें यह भी सोचना चाहिए कि···काटाहट की मौत का फ़ैसला किसी मजबूरी में ही लिया गया होगा। समय बीतता है और कई चीज़ें अनावश्यक हो जाती हैं। अमर कोई चीज नहीं है। जो अमर नहीं है, उसे यदि हम अपनी भावुकता में अमर मान लें, तो यह कहीं-न-कहीं स्वयं हमारी गलती है। मुझे विश्वास है कि आप लोग तटस्थ होकर सोचेंगे।" यहाँ नगरपति ने अपना गला खखार कर साफ़ किया, फिर स्वर को और ऊँचा कर दिया, "मंगल पर बसाई गई बस्तियों को कायम रखना एक महंगा सौदा है। सौदा महंगा इसलिए भी है कि अभी काफ़ी-कुछ साज़-सामान पृथ्वी से यहाँ आ नहीं पाया है। एक और सच्चाई यह भी है कि मंगल पर जितने खनिज आदि पाने की आशा हमने रखी थी, उस अनुपात में, खनिज यहाँ कम ही मिल सके हैं। आशा-ही-आशा में हमने मंगल पर जरूरत-से-ज्यादा बस्तियाँ बसा दी हैं। उनके बीच आवागमन का खर्च इतना अधिक है कि वहन न किया जा सके। अस्थाके के अनुसार···मंगल की सबसे बेकार···मेरा मतलब है··· सबसे अनावश्यक बस्ती है काटाहट। यदि हमें मंगल की अन्य बस्तियों का कल्याण करना है, तो काटाहट का नाश हमारे ही हाथों होना चाहिए···"

"बोर मत करिए!" बूढ़े हीरेन्द्रकुमार ने जो कि भूतपूर्व नगरपति था,

चिल्ला कर कहा, "यह सब हम पहले ही सुन चुके हैं। कुछ नया बताइये।"

नगरपति के मुंह पर ताला पड गया। नगरपति की उम्र पचास से कम नहीं थी, किन्तु भूतपूर्व नगरपति हीरेन्द्रकुमार के सामने, न जाने क्यों, वह हमेशा अपने-आपको एक लौण्डे जैसा महसूस करता। सन्नाटा छा गया। हीरेन्द्रकुमार फिर चिल्लाया, "आप रेडियो नहीं हैं। आप नगरपति हैं। फिर क्यों आप रेडियो के समाचार-बुलेटिन को दोहरा रहे हैं?"

"मैं उतना ही जानता हूं, जितना आप सब जानते हैं।" नगरपति को स्वीकार करना पड़ा, "किन्तु जानकारियों का जो विश्लेषण आप लोगों ने किया होगा, काफी सम्भव है कि मेरा विश्लेषण उससे भिन्न हो—बहुत भिन्न। इसी लिए मैं इस मंच पर खड़ा हूं। इसीलिए आप लोगों ने मुझे इस मंच पर खड़ा होने दिया है। शायद आप लोगों में से अधिकांश का विचार यही हो कि अस्याके ने राई का पहाड़ बना दिया है, कि काटाहट के कारण जो घाटा हो रहा है, वह जरा-सा ही है, किन्तु उसे बढ़ा-चढ़ाकर प्रचारित किया जा रहा है'''इस बारे में, मैं यही कहना चाहूंगा कि अस्याके पर अविश्वास करने का कोई कारण मुझे नहीं दीखता। गणित के हिसाब-किताब को बच्चों का खेल नहीं मानना चाहिए। गणितज्ञ केवल अपने मनोरंजन के लिए हिसाब नहीं लगाया करते कि यदि दो हजार आदमी किसी इमारत को एक महीने में तैयार करते हैं, तो दस हजार आदमी उसी इमारत को कितने समय में तैयार कर लेंगे—या कि एक औसत आदमी अपनी औसत जिन्दगी में कुल कितनी बार जम्हाइयाँ लेता होगा। आज का हिसाब-किताब, भविष्य में आने वाली परेशानियों को अभी से पहचान लेने के लिए लगाया जाता है।

"सोचिए कि अगर अस्याके ने हमें सावधान न किया होता, तो क्या हम मंगल ग्रह पर और-और बस्तियाँ न बसाते जाते? तब, जो घाटा हमें आज हो रहा है, उससे अनेक गुना घाटा क्या हमें न उठाना पड़ता? मुमकिन है, हम किसी ऐसी स्थिति पर पहुंच जाते, जब बिगड़ी हुई बाजी को सुधारना संभव ही न रहता। शायद हमें कभी पता भी न चलता कि मंगल ग्रह पर बनाई गई एक नन्ही-सी बस्ती काटाहट को यदि समय रहते उजाड़ दिया जाता, तो भयंकर घाटा उठाना ही न पड़ता। यदि आज हम काटाहट के साथ अपनी

भावुकता को न ओढ़े तब सरिता की कितनी बड़ी विडम्बना में सारी [illegible] आदि प्राण अन्त कर जाती ?'"—यही नगरपति, गोद लेने के लिए, [illegible] रहा।

'क्या आप सोचते हैं ये गणितज्ञ कभी गलत नहीं हो सकते ?" [illegible] कुमार ने चुनौती के स्वर में पूछा।

"गलत तो कोई भी हो सकता है, लेकिन विश्वास पर ही ब्रह्माण्ड [illegible] है।" नगरपति ने उत्तर दिया।

"तो क्या इन गणितज्ञों पर अन्धा विश्वास किया जाए ?"

"लगता है कि मुझे इस सवाल के जवाब में 'हाँ' ही कहनी पड़े[illegible] नगरपति ने बुझे हुए स्वर में कहा, 'आप डाक्टर के पास जाते हैं, जो आ[illegible] कोई ऐसी दवा देता है, जिस पर लिखा हुआ है – 'ज़हर' ! न केवल [illegible] हुआ है, बल्कि आपको यकीन भी है कि दवा में ज़हर है—फिर भी आप [illegible] दवा को पीते हैं या नहीं ? क्यों पीते हैं ? इसलिए न कि यदि आप डा[illegible] पर विश्वास न करें, तो आपका काम न चले ? इसी तरह, मैं यह भी [illegible] सकता हूँ कि लगभग इसी तरह का अन्धा विश्वास हमें गणितज्ञों पर [illegible] रखना चाहिए। रखना होगा—मजबूरी है।'

"लेकिन यह फैसला गणितज्ञों का नहीं है।" हीरेन्द्रकुमार ने तीखे [illegible] में फिर चुनौती दी, "यह फैसला तो गणितज्ञों द्वारा बनाई गई मशी[illegible] का है।"

"उससे क्या फर्क पड़ता है ?" नगरपति ने अपने साहस को अब [illegible] लिया था, "मशीनें तो मनुष्यों से भी ज्यादा सक्षम और विश्वसनीय [illegible] हैं। यदि आप मशीनों के इस फैसले पर यकीन नहीं करना चाहते, तो [illegible] काग़ज़ क़लम लेकर। खुद लगा लीजिए हिसाब ! मैं जानता [illegible] तो आप गलत साबित नहीं कर सकेंगे, मशीनें गलत तभी हो सकती [illegible] भीतर कोई खराबी पैदा हो चुकी हो—लेकिन गणितज्ञ, मशीन [illegible] गहरी नींद तो सो नहीं जाते ! वे उन मशीनों को हमेशा चेक [illegible] हमें आंकड़ों के फैसले का स्वागत करने में हिचकना नहीं चाहिए [illegible]

इसके जवाब में हीरेन्द्रकुमार चुपचाप सोचता रह गया। [illegible]

्रा सन्नाटा छा गया। भीड़ का सन्नाटा हमेशा आत्म-समर्पण का सूचक ता है। नगरपति और हीरेन्द्रकुमार में से कौन जीतता है और कौन नहीं, इ और से भीड़ ने अपने को उदासीन कर लिया था। जो भी जीते, और सका फ़ैसला जो भी हो—उसे स्वीकार करने के लिए भीड़ ने स्वयं को त्यार कर लिया था।

उस सन्नाटे को हीरेन्द्रकुमार की आवाज़ ने भंग किया, "मैं सोचता हूँ क जिस तरह एक व्यक्ति को जिन्दा रहने का हक होता है, उसी तरह एक गर को भी ज़िन्दा रहने का हक मिलना चाहिए।"

और इस फ़ैसले को भीड़ ने सिर-आँखों पर ले लिया। लोग दीवानों की ारह चीखने-चिल्लाने लगे। अब वे नगरपति को बोलने का कोई अवसर देना नहीं चाहते थे। एक तरह से वे नगरपति को मजबूर करना चाहते थे कि वह हीरेन्द्रकुमार के फ़ैसले को अन्तिम मान ले। शायद स्वयं नगरपति की भी इच्छा यही थी कि काटाहट को जिन्दा रहने देने की बात ज़ोर-शोर से उठाई जाये, लेकिन सरकार का कर्मचारी रहते हुए वह कैसे अपनी इच्छा को व्यक्त कर सकता था? अब उसने अपनी इच्छा को 'जनता के फ़ैसले' में शामिल कर दिया। सही या गलत चाहे जैसा फ़ैसला लिया जाये, किन्तु फ़ैसला लिया जाना अपने-आप में एक महत्व रखता है। महत्वपूर्ण फ़ैसला लेने का दर्प नगरपति के चेहरे पर कौंध उठा। भीड़ का सामना करते हुए उसने ज़ोर से ऐलान किया, "मंगल ग्रह पर अस्याके की जो शाखा है, मैं वहाँ जा रहा हूँ। जो मेरे साथ चलना चाहते हों, चलें।"

●●

पृथ्वी पर, अन्तरिक्ष-स्थापना-केन्द्र के निदेशक के सामने जब काटाहट का नाम आया था, तो उसके चकित रह जाने का एक ठोस कारण था। वह यह कि मंगल पर बसाई गई अनेकानेक बस्तियों में से केवल काटाहट ही एक ऐसी बस्ती थी, जिसके नाम-ठिकाने आदि से वह परिचित था शेष सारी बस्तियों को वह केवल 'मंगल की बस्तियों' के नाम से जानता था। सभी बस्तियों के अलग-अलग नाम-ठिकाने पृथ्वी पर छपी पुस्तकों में तो थे, किन्तु जनमानस में नहीं। जनमानस में केवल काटाहट का ही नाम जाना-पहचाना था। मंगल पर काटाहट की स्थापना कोई पचासेक वर्ष पहले हुई थी। भले ही काटाहट

लेकिन पृथ्वी के स्कूल-कालिजों में
ाग न तो हुआ और न किया गया, लेकिन पृथ्वी के स्कूल-कालिजों में
का नाम पढ़ाया जाता था। कारण—काटाहट ही वह जगह थी जि
लय ने मंगल ग्रह पर अपना यान सर्वप्रथम उतारा था। प्रथम अव-
ी याद में ही तो बसाया गया था काटाहट। किन्तु वह जगह बाद में
असुविधाजनक और निरुपयोगी साबित हुई। लोहा, तांबा अथवा
ोई खनिज उसके आसपास नहीं था। न वह स्थल किसी नदी के किनारे
था। खेतीबाड़ी के लिए वहाँ की जमीन बढ़िया न रही। पृथ्वी और मंगल
व आते-जाते यानों का स्टेशन भी काटाहट से हटा लिया गया था।
' नामक एक नए शहर को मंगल की राजधानी बना दिया गया था।
ड-यानों का मुख्य स्टेशन स्थापित हुआ था, रेगिस नामक
ए नगर में। जहाँ तक उद्योगों का प्रश्न था, वे कार्नफील्ड में केन्द्रित
लगे थे, जबकि कार्नफील्ड और काटाहट के बीच फासला बहुत
क था।

इसीलिए, दुखद समाचार के प्रथम आघात के बाद, सबको अपने-आप
लगने लगा कि काटाहट की मौत एक सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया
यह बात किसी के ख्याल में न आई कि मंगल ग्रह पर काटाहट के जितनी
निरुपयोगी अन्य कई बस्तियों के होने की गुंजायश थी। किसी को
सूस न हुआ कि काटाहट-निवासियों के साथ कोई बहुत बड़ा अन्याय किया
रहा है। मंगल, पृथ्वी, चन्द्रमा आदि पर इससे पहले भी कई बार
स्तियों और नगरों को मार डाला गया था। दरअसल, यह एक तरह की
र्सी-किलिंग' थी। निरुपयोगी बस्तियाँ और नगर, क्रमशः, धीरे-धीरे अनेका-
क बरसों में तड़प-तड़प कर मरें, क्या इससे बेहतर यह नहीं था कि उन्हें
क झटके में, चुटकियों में मार डाला जाए?

सच पूछें तो, अधिकांश लोग अस्थाके की तानाशाही को लाभदायक समझते
ते थे। यह अस्थाके ही तो था कि जिसकी चतुर योजनाओं के कारण लोग
ूब कमा रहे थे और मौज-मस्ती के लिए खूब समय था उनके पास। काटाह
मामले में, हो सकता है कि अस्थाके ने थोड़ी जल्दबाजी बरती हो, लेकि
ाज नहीं तो कल, काटाहट की मौत का फैसला सुनाया तो जाना ही था

अब ऐसे फ़ैसलों में कोई नवीनता नहीं रही थी। जब नवीनता थी, तब इस तरह के फ़ैसले ताबड़तोड़ न सुना कर, पहले काफ़ी भूमिका बाँधी जाती थी। लोगों को बताया जाता था कि यदि उनके नगर को मार डाला जाए, तो उनको—और समूची मानव जाति को—कितना-कितना लाभ होगा। मंगल ग्रह पर दो किस्से ऐसे भी रहे थे, जब लोगों ने अपने नगरों को स्वेच्छा से खाली कर दिया था। अस्थाके ने नगर छोड़ देने की बाबत कोई आदेश जारी नहीं किया था, किन्तु उन नगरों के निवासियों के मन में यह बात निरन्तर बिठाई जाती रही थी कि अगर उनके नगर नष्ट हो जाएँ, तो कितना अच्छा रहे।

किन्तु ज्यों-ज्यों इस तरह के फ़ैसलों की नवीनता समाप्त होती गई, त्यों-त्यों उन्हें सुनाने से पहले की भूमिकाएँ अनावश्यक होती गईं। अस्थाके एक अत्यन्त व्यस्त संस्थान था। आबादियों के सही विभाजन का काम उसके अनेक कामों में से एक था, जिसे विशेष महत्वपूर्ण भी नहीं माना जाता था। इस तरह के फ़ैसले, अब, इसीलिए ज़्यादा प्रचार नहीं पाते थे।

अस्थाके को ख़ूबसूरत नगरों के प्रति कोई मोह नहीं था। ख़ूबसूरत-से-ख़ूबसूरत नगर भी यदि स्वयं को 'बेकार' की श्रेणी में रख देता, तो अस्थाके की ओर से उसे नष्ट कर दिए जाने का आदेश जारी हो जाता। ख़ूबसूरत नगरों की मौत अवश्य थोड़ी चर्चा का विषय हुआ करती। मंगल और पृथ्वी की सचित्र पत्रिकाओं में उन मौत को दर्दनाक कहकर, अनेकानेक फ़ोटो छापे जाते, लेख लिखे जाते। किन्तु, सामान्य नगरों की मौत, पत्रिकाओं या अख़बारों में दो-तीन पंक्तियों से ज़्यादा स्थान नहीं पा सकती थी।

काटाहट की क्या स्थिति रहेगी? वह ख़ूबसूरत नगर नहीं है। क्या उस की मौत भी दो-तीन पंक्तियों का समाचार बनेगी? नहीं। ऐसा न होगा। काटाहट भले ही 'बेकार' घोषित हुआ हो और 'ख़ूबसूरत' की श्रेणी न पा सका हो, किन्तु उसके ऐतिहासिक महत्व को भला किस तरह नकारा जाएगा? क्या यही वह स्थान नहीं है कि जहाँ मानव ने इस मंगल ग्रह पर पहली बार क़दम रखे थे? काटाहट की मौत पर अवश्य इस तरह की टिप्पणियाँ प्रकाशित होंगी कि मानव ने इतिहास का अपमान किया है, कि मानव की

यही था कि नगरपति को चुपके-चुपके अपनी ओर फोड़ा जाता।

"याने···आप, दरअसल, यह जानने के लिए आए है कि काटाहट की मौत किस सीमा तक अनिवार्य है··· या कि, अनिवार्य है भी या नहीं·" मुख्य प्रतिनिधि ने शुरू किया, "स्वाभाविक है—आपकी ऐसी जिज्ञासा बहुत स्वाभाविक है—किन्तु नगरपति महोदय, क्या मैं आपको याद दिलाऊँ कि हमें हर क्षेत्र में एक सन्तुलन बनाए रखना होता है?"

"मैं जानता हू।"

"मुझे खबर मिली है कि भूतपूर्व नगरपति हीरेन्द्रकुमार ने आपका हृदय-परिवर्तन कर दिया है। क्या यह सच है?"

"व्यक्तिगत रूप से मैं अन्धाके के फ़ैसले के साथ हू, किन्तु जनता की भावनाओं को आपके सामने रखना भी मेरा पवित्र कर्त्तव्य है। इसीलिए मैं स्वय चलकर यहाँ आया हू।" नगरपति ने कहा, "मैं यह स्वीकार करने को राज़ी नहीं हू कि भूतपूर्व नगरपति ने मुझे प्रभावित कर लिया है, किन्तु इस सयोग को मैं नकार भी नहीं सकता कि जो राय जनता की है, वही राय भूतपूर्व नगरपति की भी है। इसीलिए, जब मैं जनता की राय आपके सामने रखूँगा, तो आपको गलतफहमी हो सकती है कि मैं भूतपूर्व नगरपति के ही शब्दों को दोहरा रहा हू।"

"जो भी है" मुख्य प्रतिनिधि ने उत्तर दिया, "इतना सब जानते हैं कि मगल ग्रह पर पनप रही नई मानवीय सभ्यता की प्रगति न केवल रुक जाएगी, बल्कि शायद समाप्त ही हो जाएगी यदि हमने यहाँ की उन बस्तियों को मार नहीं डाला, जो बेकार होते हुए भी स्वय मरने के लिए तैयार नहीं है। काटाहट का ही उदाहरण लीजिए। भावुकतावश आप सोच सकते हैं कि काटाहट का अपना एक महत्त्व है, किन्तु सगणकों के निर्णयों के सामने भावुकता का कोई मोल नहीं। मगल ग्रह पर महगाई जिस तेज़ी से बढ़ने लगी थी, उसे काबू में रखने के लिए, जैसा कि आप स्वय जानते है, 'हर जगह, हर चीज़, एक दाम' पर, की नीति अपनाई गई थी। उस नीति के अनुसार, एक वस्तु राजधानी कैनाप में जिस दाम पर मिलती है, उसी दाम पर काटाहट में भी हमें उपलब्ध करनी होती है—जब कि कैनाप है ब्रह्माण्ड-यानों का स्टेशन। पृथ्वी से भेजा

गया माल यहाँ सीधा उतरता है। उसी माल को हमें काटाहट तक मुफ्त भेजना पड़ता है। इस तरह, प्रत्येक वस्तु के पीछे हमें गहरा नुक्सान हो रहा है। सोचिए कि अगर काटाहट के निवासी कैनाप में ही आकर बस जाएँ, तो क्या हो। हर चीज उन्हें काटाहट ले जा कर देने का बोझ, यहाँ की अर्थ-व्यवस्था पर से हट जायेगा या नहीं? मुझे खुशी है कि काटाहट के अस्तित्व को, व्यक्तिगत रूप से, आप अनावश्यक समझते हैं। जाइए, जनता को भी समझाइये।"

"बात यह है, प्रतिनिधि महोदय!" नगरपति ने कहा, "जनता के तीव्र मनोबल ने मेरे निर्णयों को डगमगा दिया है। मैं स्वयं तय नहीं कर पा रहा कि मैं क्या सोचता हूं, क्या नहीं। मुमकिन है कि इसका अर्थ यही हो कि मैं जनता के साथ हूं..."

"लेकिन अभी थोड़ी देर पहले तो आप कह रहे थे कि..."

"महत्व इसका नहीं है कि मैं क्या कह रहा था। महत्व इसका है कि जनता क्या कहती है।" नगरपति ने टोक दिया, "काटाहट मरना नहीं चाहता।"

"काटाहट को विवेक से काम लेना चाहिए।"

"जिस तरह भावुकता हर जगह काम नहीं आती, उसी तरह विवेक भी हर जगह उपयोगी नहीं हुआ करता।" नगरपति का जवाब था, "मान लीजिए कि आप मेरे पास आते हैं और बताते हैं कि मानव जाति के कल्याण के नाम पर मेरी मौत अनिवार्य हो चुकी है—मुमकिन है कि सच्चाई भी यही हो—किन्तु फिर भी, मैं जीवित रहना चाह सकता हूं।"

"लेकिन यहाँ सवाल नगर की मौत का है, नगर-निवासियों की मौत का नहीं। किसी का बाल भी बाँका न होगा।"

"सवाल किसी की भी मौत का नहीं है। सवाल दरअसल उस आजादी का है, जिसे हमने हर व्यक्ति का जन्म-सिद्ध अधिकार माना है। उसी आजादी के तहत लोग नहीं चाहते कि काटाहट को छोड़ें। मैं स्वयं अपनी बात कहता हूँ। काटाहट चाहे जैसा भी है, वह मुझे माफिक आ गया है। नगरपति के रूप में लोगों ने मुझे पसन्द किया है और मैं भी लोगों पर जान छिड़कता हूँ। काटाहट के न रहने पर मुझे वे लोग कहाँ मिलेंगे, जिन पर मैं जान छिड़क

सकूँ ? सब बिखर जाएँगे। कोई इधर जाएगा, कोई उधर। कई ऐसे भी होंगे जो पृथ्वी पर वापस लौट जाना चाहेंगे। काटाहट के साथ हमारी परम्परायें बंधी हुई हैं। वहाँ हम एक ऐतिहासिकता महसूस करते हैं। वहाँ से हटने पर हमें लगेगा कि कोई भी पारिवारिक, सांस्कृतिक या आर्थिक परम्परा हमारे साथ नहीं जुड़ी हुई—हम आकाश से टपके हैं और आकाश में ही गायब हो जायेंगे, क्योंकि यदि हम दूसरों की देखादेखी, मंगल पर ही मरते हैं, तो हमें जलाने वाला कोई न होगा। लाशों को जला देना एक पुरानी परम्परा है। जिनके साथ किसी भी तरह की परम्परा नहीं जुड़ी होगी, उनके साथ लाशों को जलाने की परम्परा भी क्यों जोड़ी जाएगी ?"

"आप की बातें काव्यात्मक हैं, किन्तु भाई मेरे, मंगल ग्रह पर हम कविता करने नहीं, नए खनिज ढूँढने आए हैं, व्यापार करने आए हैं। खेद है, मैं आप से सहमत नहीं हो सकता।"

"आपका खेद मेरे लिए, या मेरे नगर के निवासियों के लिए, कतई उपयोगी नहीं!" नगरपति ने कहा, "मानता हूं कि आप हमें कहीं-न-कहीं बसा देंगे, कि जहां मैं खेती कर सकूँ, कि जहां मेरे कई पड़ोसी हों, कि जहां मेरा ट्रक आ-जा सके। लेकिन क्या आप सुभद्रा को ही मेरी पड़ोसिन के रूप में दे सकेंगे ? *क्या आप मुनव्वर और फिरोजा खम्बाटा को ही मेरे घर के ठीक सामने* बसा सकेंगे ? जब मुझे बहस करने का मन होता है, मैं काटाहट के दूसरे छोर पर रहने अपने दोस्त लक्ष्मणस्वरूप के पास चला जाता हूं। जिस नए नगर में आप मुझे बसायेंगे, क्या उसके दूसरे छोर पर लक्ष्मणस्वरूप ही रह रहा होगा? उसके घर तक क्या मैं उतना ही आसानी से और उतने ही कम समय में पहुंच जाऊंगा कि जिस तरह आज पहुंचा करता हूं ? देखिये, प्रतिनिधि महोदय, बहसों का कभी कोई अन्त नहीं हुआ करता। यदि मेरे पास दलीलें हैं, तो आप के पास भी दलीलें हैं। अपनी-अपनी जगह शायद हम दोनों सही भी हों—लेकिन बताइये कि हम लोग पृथ्वी छोड़ कर मंगल पर आखिर आए क्यों हैं ? क्या सिर्फ इसलिए कि यहाँ बहुत परिश्रम से हम अपने नगर तैयार करें और जब हम सोने की तैयारी कर रहे हों, तब आप आकर हमें बतायें कि मानव जाति के कल्याण के नाम पर इन नगरों को नष्ट कर देना अनिवार्य है ?

तरह पढ़ाता-लिखाता है ? शायद आप कहना चाहें कि अभी मैं सनकियों की भांति बहक रहा हूं—लेकिन यकीन जानिए, मैं पूरे होश में हूं। अपने एक-एक शब्द का अर्थ मेरे सामने स्पष्ट है।"

नगरपति ने सच कहा था—कि बहसों का कभी अन्त नहीं हुआ करता, क्योंकि सबके पास अपने-अपने तर्क होते हैं। मुख्य प्रतिनिधि ने बहस करने से साफ इन्कार कर दिया, क्योंकि बहसों का कभी अन्त नहीं हुआ करता और सबके पास अपने-अपने तर्क होते हैं।

बहस की गुंजाइश तो न रही, किन्तु फतवे की गुंजाइशें कभी खत्म नहीं हुआ करतीं। मुख्य प्रतिनिधि ने फतवे की शैली में ऐलान कर दिया कि नगरपति जो सोचता है, सब गलत है। क्यों गलत है ? क्योंकि गलत है।

लेकिन जिस तरह नगरपति एक राजनीतिज्ञ था, उसी तरह मुख्य प्रतिनिधि भी राजनीतिज्ञ था, दिलासा देने के लिए उसने कहा, "मैं अस्याके के मुख्य कार्यालय को सन्देश भिजवाता हूं कि काटाहट के बजाए किसी अन्य बस्ती का चुनाव किया जाए—बशर्ते···"

"बशर्ते ?"

"···ऐसा करना सम्भव हो।"

"काटाहट जैसी ही स्थितियां अन्य बस्तियों में भी ढूंढी जा सकती हैं। मुमकिन है कि वहां के लोग काटाहट-निवासियों की तरह भावुकता से न सोचें और बस्ती का त्याग करने के लिए फौरन राज़ी हो जाएं।" नगरपति ने उठते हुए कहा, "मैं उत्सुक हूं कि अस्याके का मुख्य कार्यालय क्या जवाब देता है।"

"अवश्य ! ज्यों ही मुझे जवाब मिलेगा, मैं सूचित करूंगा।" मुख्य प्रतिनिधि ने कहा।

किन्तु उन दोनों ने ही भांप लिया था कि पुनः हिसाब-किताब करवाने का समय अब किसी के पास नहीं है। यदि हो तो भी—पुन: गणनाएं करवाने पर अस्याके की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचेगा। राजनीतिज्ञों जैसी नकली मुस्कानों के साथ नगरपति और मुख्य प्रतिनिधि जुदा हुए।

नगरपति के जाते ही मुख्य प्रतिनिधि ने मंगल ब्रह्माण्ड-स्टेशन नम्बर एक के द्वारा पृथ्वी ब्रह्माण्ड-स्टेशन नम्बर तीन से सम्पर्क स्थापित किया और फिर, उसके माध्यम से, अपना सम्बन्ध अस्याके के मुख्य कार्यालय से जोड़ा। संगणकों

हैसियत से मैं कितना दुखी हूँ। फाटाहट मेरे बच्चे के समान है। हस्ताक्षर कर दो, लक्ष्मण, वरना अर्थ यही होगा कि तुम मेरे बच्चों की मौत की कामना करते हो।"

लक्ष्मणस्वरूप क्षण-दो-क्षण देखता रह गया नगरपति की आँखों में। फिर उसने धीमे स्वर में पूछा, "क्या अभी आप उस याचिका को साथ लेते आये हैं?"

"हाँ!" नगरपति की आँखें चमक उठीं, "यह रही। करो हस्ताक्षर।"

"नहीं।" लक्ष्मणस्वरूप गम्भीर था, "मैं इससे असहमत हूँ—लेकिन मैं ऐसा आभास भी नहीं देना चाहता कि आपके बच्चे की मौत से मैं खुश होऊँगा। आप मेरे बुजुर्ग हैं, दोस्त भी हैं। मैं आपकी इज्जत करता हूँ। मैं आपके कंधे-से-कंधा भिड़ाकर सारे नगर में घूमूँगा, लोगों से कहूँगा कि वे हस्ताक्षर कर दें। मेरा पूरा सहयोग आपके साथ रहेगा—लेकिन स्वयं मैं हस्ताक्षर नहीं कर सकूँगा। माफ कर दें, प्लीज़!"

"लक्ष्मण!"

"मैं इस अभियान से असहमत हूँ। कल भी मैंने यही कहा था।"

"मुझे तुम्हारा सहयोग नहीं चाहिए, लक्ष्मण।" नगरपति उठ खड़ा हुआ, "क्योंकि तुम्हारी सिफारिश के बिना भी लोग हस्ताक्षर कर चुके हैं। जो इने-गिने बच गए हैं, वे कर देंगे। सहयोग के प्रस्ताव के लिए तुम्हारा अत्यन्त आभारी हूँ। अभी चलता हूँ। क्या मैं आशा रखूँ कि तुम पुनः सोचोगे?"

"सोचना क्या है! मैं जानता हूँ कि मैं गलत नहीं हूँ।"

"बच्चों जैसी ज़िद करते हो।"

"ज़िद तो बुजुर्गों की भी प्रसिद्ध है!" और लक्ष्मणस्वरूप मुस्करा दिया। नगरपति ने इस व्यंग्य को चुपचाप पी लिया। वह बाहर निकल आया। अब उसे कुमारी मोराशिदु से मिलना था। क्या वहाँ भी असफलता मिलेगी?

मोरा और लक्ष्मण, केवल दो व्यक्तियों का इनकार कोई अहमियत नहीं रखता—ऐसा एक आश्वासन ही देखना पड़े शायद! —यदि 'फाटाहट बचाओ' की याचिका खारिज कर दी गई...

फाटाहट के अधिकांश निवासियों के प्रति मोरा कितने तीव्र आक्रोश से

ी हुई है पहली बार आना नगरपति ने। मोना ने तो काटाहट छोड़कर
ने जाने की तैयारियाँ कभी से कर ली थी—जबकि मामला अभी अधर में
ी था। सारे कार्ड, सारा साजोसामान वह तैयार कर चुकी थी।

"लेकिन क्यों ?"

"क्योंकि यह निहायत घटिया बस्ती है। यहाँ के लोगों के दिमाग में कूड़ा
रा हुआ है!"

"नहीं, मोना तुम गलती पर हो…"

"गलत बस्ती पर हूँ।" मोना ने होंठ बिचकाए, "यहाँ के दायरे कितने
सीमित हैं! यहाँ एक नहीं, अनेक लोग हैं, जो मुझसे सिर्फ इसलिए बात नहीं
करते कि एक दिन मैं नहाने की पोशाक में बाजार चली गई थी। जाने कितने
लोग मुझे सिर्फ इसलिए कुलटा समझते हैं कि मेरा प्यार तीन युवकों के साथ
रहा, किन्तु तीनों से टूट गया। भला इसमें मेरा क्या क़सूर, यदि तीनों ही
मन के अच्छे साबित न हुए? काटाहट भी कोई रहने की जगह है? जो
जीर्ण, देहाती सभ्यता पृथ्वी पर सदियों पहले मर चुकी, उसी को काटाहट
फिर से जीवित किया गया है। यहाँ रहना तो प्रेत-पूजा के समान है!"

"जैसा भी है, यह तुम्हारा अपना घर है।" नगरपति ने कहा, "तुम्हारा
जन्म यहीं हुआ है। हम लोग तो बाहर से आकर बसे हैं, जबकि तुम यहीं की
पैदाइश हो। तुम्हें काटाहट से प्यार होना चाहिए।"

"जबरन? झूठा?"

"तुम्हारे माता-पिता को इस बस्ती से बेहद लगाव था।"

"उन्हें रहा होगा। वे मर चुके हैं। मैं अकेली हूँ और आज़ाद भी हूँ।
जा रही हूँ।"

उसके शब्दों ने नगरपति को कितना आहत कर दिया है। उसने मुलायमियत से कहा, "आपको मैं बड़ी उज्जड्-सी लग रही होऊँगी—है न ? लेकिन ऐसा न सोचिएगा कि मैं आपका सम्मान नहीं करती। मैं जानती हूँ कि आप कितने अच्छे हैं। आपने मुसीबत के समय मुझे हमेशा सहारा दिया है। बचपन से ही मैंने आपका प्यार पाया है। यदि आपका कोई पुत्र होता तो—सच मानिए—मैं उससे शादी करके आपकी पुत्र-वधू बन जाती!"

नगरपति मुस्कराए बिना न रह सका। वह जानता था कि मोना ने यह बात सिर्फ उसे खुश करने के लिए कही है, वरना जो लड़की तीन-तीन युवकों से प्यार करके, तीनों को नालायक घोषित कर चुकी हो, वह नगरपति के पुत्र का चुनाव सिर्फ इसलिए कर ले कि उसे नगरपति की पुत्र-वधू बनना है—कोई वजूद नहीं था इसमें!

लेकिन मोना ने वह बात नगरपति को खुश करने के लिए कही थी और नगरपति खुश हो गया था। ज्यों ही नगरपति के चेहरे पर मुस्कान आई, वह जान गया कि मोना ने उसे हरा दिया है। "मैं तुमसे फिर बात करूँगा।" वह बुदबुदाया। वह हारना नहीं चाहता था।

"जरूर!" मोना खिलखती हुई सामने से हट गई।

नगरपति ने गहरी सांस ली। मोना काटाहट छोड़कर चली जाने वाली है। जो चली जाएगी, उसके हस्ताक्षर याचिका पर मिलते हैं या नहीं, महत्व विशेष नहीं है। दिक्कत तो लक्ष्मणस्वरूप जैसे व्यक्तियों के इन्कार के कारण पेश होगी—क्योंकि लक्ष्मणस्वरूप रहेगा काटाहट में, और गालियाँ भी काटाहट को ही देगा।

कोई डेढ़ घण्टे बाद, मोना नगरपति को ढूँढ़ती फिर रही थी। आमना-सामना होने पर उसने चुपचाप याचिका पर हस्ताक्षर कर दिए।

"नहीं जा रही हो ?" नगरपति ने अविश्वास से पूछा।

"नहीं।" मोना मुस्करा दी, "लोगों को जब पता चला कि मैं जाने वाली हूँ, तो सबने मेरे साथ प्यार का व्यवहार किया। सब कहने लगे कि मत जाओ, मत जाओ। लिहाजा मैंने सोचा कि फिलहाल रुक ही जाऊँ!"

"मुझे भरोसा है कि आगे भी तुम रुक जाने की सोचोगी, जाओगी नहीं।"

"क्या पता !" और मोना पुनः मुस्करा दी।

"मुझे पता है, तुम नहीं जा सकोगी। अपनी जगह का मोह ऐसा ही होता है।"

"बहरहाल…अभी तो मैं इसलिए रुक रही हूँ कि जब मैं जाने लगी, तो बहुत सारे लोग विदाई देने के लिए मेरे घर आ गए। वे तरह-तरह के उपहार लेकर आए थे। मैंने सारे उपहार रख लिए और जाने का इरादा छोड़ दिया। अगली बार फिर यही करूँगी, ताकि नए-नए उपहार हजम कर सकूँ !" और मोना खिलखिला उठी।

"धत् लालची बन्दरिया !" नगरपति ने प्यार से कहा।

"बन्दरिया ! यह कैसी उपाधि है ?"

"बन्दर एक प्राणी होता है—चार पैरों और एक दुम वाला। पृथ्वी पर आज भी कहीं-कहीं पाया जाता है। मैंने उसकी तस्वीरें पुस्तकों में देखी हैं।"

"मैंने तो नहीं देखी।" मोना बोली।

"कभी घर आना। दिखाऊँगा। बन्दर की मादा को बन्दरिया कहते हैं। यह बहुत लालची होती है।"

"लेकिन मेरी तो दुम नहीं है।"

"तो भी तुम बन्दरिया हो !"

मोना मुँह फाड़ कर ठहाका लगाने लगी। नगरपति देखता रह गया। अठारह-उन्नीस बरस की उम्र कितनी बढ़िया होती है ! ऐसी नाजुक घड़ी में भी इतना उन्मुक्त ठहाका मोना केवल इसी लिए लगा पा रही है न कि वह अठारह बरस की है ?

●●

लक्ष्मणस्वरूप की तरह तरुणकुमार ने बहस तो नहीं की, लेकिन उस युवक ने भी याचिका पर हस्ताक्षर करने से एकदम इन्कार कर दिया। नगरपति और भूतपूर्व नगरपति, दोनों ने उसे समझाना चाहा, लेकिन जब वह बहस करने को तैयार ही नहीं था, फिर उसे समझाया किस तरह जा सकता ? बहुत सुन्दर और आकर्षक था तरुणकुमार का व्यक्तित्व। नगरपति ने मन ही मन कई बार सोचा था, "यदि मोना का प्यार तरुणकुमार के साथ बढ़े तो

कभी न टूटे।' लेकिन मोना और तरुणकुमार, किसी अज्ञात कारण (या संकोच) वश, अभी तक प्यार की डोर से बँध नहीं पाये थे। तरुणकुमार की यह खास आदत थी कि वह कभी किसी से बहस नहीं करता था, लेकिन अपनी मान्यताओं पर उसे अनोखा विश्वास था। जो वह मान लेता, सो मान लेता—उस निर्णय से फिर उसे किसी भी तरह न हिलाया जा सकता। "पुराने ज़माने में, पृथ्वी पर, जिस तरह धर्म-गुरु अपने प्रचार के लिए निकला करते थे, उसी तरह आप यहाँ मंगल पर निकले हैं!" तरुणकुमार ने मुस्कान के साथ कहा, "एक ओर ठण्डी, विवेकहीन मशीनें हैं और दूसरी ओर हैं पुरातन पन्थियों के प्रतिनिधि के रूप में आप—जो इस नन्हे-से नगर में हीरो बनना चाह रहे हैं!"

"नहीं, तरुण!" नगरपति ने उत्तर दिया, "मुझे हीरो बनने की कोई चाह नहीं। मैं तो अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ के अनुसार कार्य कर रहा हूँ!"

"जो भी है…" तरुणकुमार मुस्कराया, "मानना पड़ेगा कि आपने अपने कार्य में अनोखी सफलता पाई है। कितने सारे हस्ताक्षर इकट्ठे कर लिए हैं आपने! लेकिन मेरी यही राय है कि आप ग़लत हैं—जिनके हस्ताक्षर आपने लिए हैं, वे भी ग़लत हैं और मैं अपनी इस राय पर बहस नहीं करना चाहता।"

"बहस मुझसे भी नहीं करना, तरुण, लेकिन तुम्हारी इस बात से मैं सहमत नहीं हूँ कि मैं ठण्डी और विवेकहीन मशीनों का विरोध करने निकला हूँ। मशीनों से मुझे, सच पूछो तो, ज़रा भी विरोध नहीं। मशीनें अपना काम करती रहें—किसी को क्या एतराज़! लेकिन मशीनों के निष्कर्षों को अन्धे-पन के साथ मानने वाले इन्सानों का विरोध तो हम कर सकते हैं न?"

"आप आख़िर चाहते क्या हैं?" तरुणकुमार ने पूछा।

"सिर्फ़ यह कि मशीनों के फ़ैसले को यदि काटाहट-निवासी नकारना चाहें, तो उन्हें नकारने का पूरा अधिकार दिया जाए। उन्हें इस नगर से ज़बरन निकाला न जाए।"

"बहरहाल…मुझे आशा है कि आप इस याचिका पर हस्ताक्षर करने के

लिए मुझे मजबूर नहीं करेंगे।

"प्यारे, तुम इस मसले को और देख सकते हो ?"

"नहीं।" सनतकुमार का उत्तर था, "नगर के विरुद्ध का आदेश न दिया गया होता, तब भी, मैं ऐसा करने ही वाला था।"

उसी समय किसी ने आकर सूचित किया कि 'कैसल' में सरकार के मुख्य प्रतिनिधि महोदय, काटाहट पधारे हैं। सनतकुमार और नगरपति की बातचीत रुक गई। मुख्य प्रतिनिधि से मिलने के लिए नगरपति रवाना हो गया।

मुख्य प्रतिनिधि के चेहरे पर चिन्ता की गहरी छाया मंडरा रही थी। याचिका पर हस्ताक्षर लिए जा रहे हैं, यह उसने सुन लिया था। नगरपति से उसने पूछा, "क्या यह है कि आपका 'काटाहट बचाओ' आन्दोलन बहुत जोरों पर है—क्यों ?"

"जी हाँ," नगरपति ने कहा, "जनता मेरे साथ है। अब मैं भी उसी तरह सोचने लगा हूँ, जिस तरह जनता।"

"क्या आप जानते हैं कि सरकार के आपातकालीन आदेशों का विरोध करना एक अपराध है ?"

"ज़्यादा से ज़्यादा यही होगा न कि मुझे सजा दी जाएगी ?" नगरपति ने भौंहें उठाईं, "सजा तो वैसे भी मिल कर रहेगी। यदि मैं विरोध नहीं करता, तो—क्या आप काटाहट छोड़कर चले जाने की सजा मुझे नहीं देंगे ?"

मुख्य प्रतिनिधि ने नगरपति, भूतपूर्व नगरपति तथा अन्य कई नागरिकों को समझाने की भरसक चेष्टा की, लेकिन उसकी बातें किसी के भी गले से नीचे नहीं उतर रही थीं—और इस असफलता को उसने उसी क्षण भाँप भी लिया था। अन्ततः उसने नगरपति से कहा, "आपकी याचिका पर काटाहट का यदि एक व्यक्ति भी हस्ताक्षर करने से इन्कार करता है, तो वह सर्व-सम्मति की याचिका नहीं रह जाती···"

"जो एक-दो लोग हस्ताक्षर नहीं करेंगे, वे काटाहट छोड़ कर स्वयं ही चले जायेंगे। यहाँ जो रह जायेंगे, उन सबके हस्ताक्षर आप याचिका पर देख सकेंगे। इस प्रकार, हमारी याचिका, अपने आप, सर्व-सम्मति की याचिका बन जाएगी।" नगरपति ने कहा। मुख्य प्रतिनिधि जान गया कि नगरपति

की इस दलील मे काफी वजूद था। वह बोला, "नगरपति महोदय! जिस तरह आप सरकारी नौकर हैं, उसी तरह मैं भी हूँ। मेरा ख्याल है कि आप असहमत नहीं होगे, यदि मैं कहूँ कि सरकारी आदेश मिलने पर मैं आप लोगो का किसी भी सीमा तक दमन कर सकता हूँ..."

"क्यों नहीं!" भूतपूर्व नगरपति हीरेन्द्रकुमार ने, नगरपति के बोलने से पहले ही कह दिया, "आपकी मजबूरी हम खूब समझते हैं। काटाहट के दमन के लिए फौज कब रवाना की जाएगी?"

"फौज?" मुख्य प्रतिनिधि ने चौंक कर देखा हीरेन्द्रकुमार की ओर, "मैंने फ़ौज का नाम भी नहीं लिया।"

"फिर आप काटाहट का दमन किस तरह करेंगे?" हीरेन्द्रकुमार की आँखें व्यंग्य से चमक रही थी।

"अभी इस पर हमने सोचा नहीं है, लेकिन...मानव जाति के लिए यह शर्म की ही बात होगी, यदि मंगल ग्रह पर हम आपस मे लड़ पड़े।"

"किन्तु दमन शब्द आप ही ने पहले इस्तेमाल किया।" नगरपति ने टोका।

"हाँ—उस शब्द को मैं वापस भी नहीं लूँगा...किन्तु इसका यही एक अर्थ नहीं है कि अपने ही भाइयो के दमन के लिए हम फ़ौज का इस्तेमाल करेंगे।"

"भाईचारे की दुहाई न दीजिए। मीठे शब्दो से हमे बहलाइये नहीं। सीधे-सीधे बता क्यों नहीं देते कि फौज कब भेजी जाएगी?" नगरपति का स्वर काँप रहा था।

"यानी...आप लोग मुझे उत्तेजित करना चाहते हैं—ताकि मैं फ़ौज इस्तेमाल करने पर आमादा हो जाऊँ?"

"हम पहले से ही जानते थे कि जब भी फौज इस्तेमाल की जाएगी, तब उसका दोष काटाहट-निवासियों के ही मत्थे होगा।"

"आप मुझे पुनः उत्तेजित कर रहे हैं।"

"मैं केवल सच बोल रहा हूँ। कई लोग सच्चाई को सह नहीं पाते।"

"क्यों न हम बातचीत थोड़ी देर के लिए रोक दें? तनातनी बढ़ जाने

हमें मंगल ग्रह के अपने राज्य को ही त्याग कर वापस पृथ्वी पर चले जाना चाहिए—है न ?"

"कतई नहीं !" नगरपति ने कहा, "इस के बजाए, हमें किसी ऐसी सभ्यता का विकास करना चाहिए, जो हर बात का मूल्यांकन केवल आँकड़ों से करती हो।"

"आपका सुझाव अनोखा है, किन्तु वैसी सभ्यता का विकास ताबड़तोड़ तो होने से रहा। ऐसे विकास बहुत धीमे-धीमे होते हैं — सदियों-सदियों तक इसकी प्रक्रिया चलती रहती है। जितना घाटा हो रहा है, उसे देखते हुए—सदियों-सदियों का इन्तजार हम कर नहीं पाएँगे। उससे पहले ही, मंगल ग्रह पर से, मानव का अस्तित्व समाप्त हो चुका होगा…"

"मानव के अस्तित्व का सवाल बहुत बड़ा है।" नगरपति हँसा, "पहले हम काटाहट के अस्तित्व का छोटा-सा सवाल तो हल करें !"

"आप ही ने इस सवाल को इतना बड़ा रूप दे दिया है।"

"हमारे लिए यह सवाल छोटे नहीं हैं। मानव के अस्तित्व की बात अभी न करिए।"

"तो ठीक है; चलिए, हम काटाहट के ही अस्तित्व की बात उठाते हैं।" मुख्य प्रतिनिधि ने कहा, "मंगल ग्रह पर जितनी भी मानवीय बस्तियाँ हैं, सब का भविष्य केवल इसी पर निर्भर करता है कि काटाहट को जीवित रखा जाए या नहीं। क्या काटाहट-निवासियों को इतना अधिक स्वार्थी होना चाहिए ? मंगल ग्रह की अनेकानेक बस्तियों पर सोचने के बजाए, क्या उन्हें केवल अपने पर सोचना चाहिए ?"

"आप व्यर्थ ही उलझ रहे हैं। अपने यन्त्रों से जाकर कहिए कि समस्या का कोई और हल सोचा जाए, घाटा पूरा करने का कोई और तरीका निकाला जाए, बनी-बनाई नगरियों को उजाड़ना कोई तरीका नहीं है।"

मुख्य प्रतिनिधि काटाहट से चला गया। जाते-जाते उसने कहा कि वह फिर आयेगा। सब जानते थे कि वह फिर आयेगा—और इस बार शायद वह दोस्त के रूप में नहीं आयेगा। उसके साथ होगी फौज…

काटाहट-निवासियों को जो मियाद दी गई थी, उसे परसों खत्म हो जाना

गई…

●●

जिस दिन मिटाव शान्त हुई, धमाके का मुख्य प्रतिनिधि उसी दिन आ धमका। उसके साथ पचास टूक थे—और वे सभी भरे थे फौजी! नगरपति उन सबके सामने गम्भीरता से डट गया। नगरपति के दाहिनी ओर खड़ा था नरेन्द्रकुमार। वह अपनी ठुड्डी सहला रहा था। बाईं ओर मोना खड़ी थी। भय और अविश्वास—दोनों बोल रहे थे मोना की आँखों में। फौजी जवान जब मुस्तैदी के साथ आहट भी सड़कों पर बिखरने लगे, तब भूतपूर्व नगरपति हीरेन्द्रकुमार ने मुट्ठियाँ भींच लीं।

"मुझे आशा है कि…आप मुझे अपनी याचिका देने के लिए सामने आए हैं!" मुख्य प्रतिनिधि ने व्यंग्यभरी निगाह नगरपति पर डाली।

"जी हाँ।" और नगरपति ने याचिका बढ़ा दी।

"क्या इसमें यहाँ के एक-एक व्यक्ति के हस्ताक्षर हैं?"

"जी हाँ, लेकिन याचिका का कितना सम्मान किया जाय, यह पूरी तरह आप ही पर निर्भर करता है।" नगरपति के स्वर में भी व्यंग्य कोई कम

नहीं था।

"बधाई, नगरपति महोदय !" मुख्य प्रतिनिधि ने कठोरता से कहा, "मैंने नहीं सोचा था कि आपको एक-एक व्यक्ति के हस्ताक्षर मिल जायेंगे''' बहरहाल'''मुझे आदेश दिया गया है कि याचिका पूरी हो, चाहे अधूरी हो—मैं उस पर ध्यान न दूँ।"

"ऐसा आदेश पाने के लिए आपको भी शत-शत बधाइयाँ !"

"धन्यवाद !" मुख्य प्रतिनिधि बोला, "अब आप मुझे अपनी कार्यवाही करने दें।"

"अवश्य ! और हम भी अपनी कार्यवाही करेंगे।"

"क्या मतलब ?"

"हमें आत्म-रक्षा का तो अधिकार है न ?" नगरपति ने पूछा।

"आत्म-रक्षा का सवाल तब है, जब हम आप लोगों की जान लेने आए हों !"

"जीते-जी तो हम यहाँ से निकलेंगे नहीं।"

"मुझ से कहा गया है कि जो विरोध करे, उसे जबरन उठाकर ट्रक में डाल दिया जाए।"

"क्या आपके फ़ौजी महिलाओं को स्पर्श करेंगे ?"

"यह निहायत दकियानूसी का सवाल है। आज के युग में पुरुष और महिलाओं पर अलग-अलग नहीं सोचा जाता।" मुख्य प्रतिनिधि ने जवाब दिया।

नगरपति बोला, "मुझे खुशी है कि आज का युग काटाहट तक नहीं पहुँच पाया है। यहाँ तो यहाँ के ही नियम चलेंगे। खबरदार जो किसी ने हमारी महिलाओं को हाथ लगाया।"

"क्या महिलाएँ विरोध करेंगी ?"

"विरोध एक-एक व्यक्ति करेगा।"

"लेकिन किस तरह ? क्या आप लोगों के पास हथियार हैं ?"

"नहीं। यदि आप हमारी जान लेने नहीं आए हैं, तो हम भी आपकी जान नहीं लेंगे।" नगरपति ने कहा।

"तो क्या करेंगे ?"

"जो आपको करना हो, करिए। हमें जो करना होगा, हम करेंगे।"

"चुनौती दे रहे हैं ?"

"इसे यदि आप चुनौती के रूप में देखें, तो भी हमें एतराज नहीं है।" यह स्वर था मोना का। मुख्य प्रतिनिधि ने चौंककर देखा उसकी ओर। मोना पर ही उसने अपना गुस्सा सबसे पहले उतारा। "चलिए, देवी जी, बैठिए ट्रक में।" वह गरज उठा।

"असम्भव।"

"देखते क्या हो ?" मुख्य प्रतिनिधि ने अपने अंग-रक्षकों से कहा, उठा कर पटक दो इसे !"

अंग-रक्षक तीन थे। उनमें से एक झपटा मोना की ओर। शेष दो बढ़े तरुणकुमार और नगरपति की दिशा में, ताकि यदि वे मोना को बचाना चाहें, तो न बचा सकें।

लेकिन तरुणकुमार या नगरपति में से किसी ने भी मोना को बचाने की चेष्टा नहीं की। वे अपनी जगहों पर चुपचाप खड़े देखते रहे। मुख्य प्रतिनिधि को समझते देर न लगी कि काटाहट के हर व्यक्ति को, जहाँ तक हो सके, अपनी रक्षा स्वयं ही करने के आदेश दिए जा चुके हैं। क्या मोना एक ताक़तवर फ़ौजी जवान से टक्कर ले सकेगी ? मुख्य प्रतिनिधि की आँखें सिकुड़ आयीं।

उसे सहसा अपनी आँखों पर विश्वास ही न हुआ, जब उसने पाया कि कुमारी मोना सिंह उस फ़ौजी जवान के कपड़े फाड़ने लगी है। इस विचित्र हमले से जवान चकित रह गया था। जितनी बार भी उसने मोना के नज़दीक जाना चाहा, मोना ने उसके कपड़े कहीं-न-कहीं से अवश्य फाड़ दिए। "यह क्या मज़ाक है !" मुख्य प्रतिनिधि बुदबुदाया।

और सचमुच उस सारी घटना ने देखते-ही-देखते एक मज़ाक का ही रूप धारण कर लिया। अपनी मरज़ी से ट्रकों में बैठने के लिए कोई तैयार नहीं था, और जब उन्हें ज़बरन बिठाने के लिए नज़दीक जाया जाता, तो वे फ़ौजियों के कपड़े फाड़ने लगते। औरत, मर्द, बच्चे—सब यही कर रहे थे।

यह एक ऐसी स्थिति थी कि जिसमें स्वयं फौजियों को भी हँसी आने लगी। जब तक उनके कपड़े इतने नहीं फटे थे कि शरीर से अलग होकर गिर जाएं, तब तक तो वे हँसते या मुस्कराते रहे—लोगों पर जबर्दस्ती करने के उनके प्रयासों में कोई उग्रता न आई—लेकिन जब उनके कपड़ों के चिथड़े जमीन पर बिछ जाने लगे, तो उन्हें गुस्सा आया। उस गुस्से की परवाह काटाहट के किसी निवासी ने न की। अजीब-सी चिल्ल-पों सारे नगर में मची हुई थी। ट्रक चुपचाप खड़े थे। हुंकारते और चुनौतियाँ देते लोग इधर-उधर लपक रहे थे।

'जैसे को तैसा' की नीति अपनाते हुए, यदि फौजियों ने भी काटाहट-निवासियों के कपड़े फाड़ने शुरू कर दिए होते, तो स्थिति क्या होती, कहना मुश्किल है, किन्तु काटाहट निवासियों ने शुरू से ही गणना कर ली थी कि फ़ौजी जैसे के साथ तैसा नहीं कर सकेंगे। जो सरकारी हुक्म लेकर वे आयेंगे, उसमें लोगों के कपड़े फाड़ने का आदेश दिया गया हो, इसका सवाल ही नहीं था। 'अपने ही भाइयों' पर किसी तरह की जबर्दस्ती न की जाय, उन्हें सिर्फ उठाकर, मुलायमियत से, ट्रकों में डाल दिया जाय—कुछ-कुछ ऐसा ही आदेश लेकर फ़ौजी आयेंगे···और फ़ौजी सचमुच उसी तरह का आदेश लेकर आए थे।

अस्थाके का मुख्य प्रतिनिधि भी उस आदेश में रद्दोबदल नहीं कर सकता था। उसकी उलझन की तब सीमा न रही, जब उसने देखा कि फौजी जवान—अधिकांश जवान—कमर से ऊपर अब कुछ भी पहने हुए नहीं हैं। फौजियों का गुस्सा अब झेंप और शर्म में बदलने लगा था। काटाहट के निवासी जीतने लगे थे। बार-बार वे अपनी जीत का स्वागत करते हुए नारे लगाते।

यहाँ तक तो वह स्थिति कम, एक मज़ाक जैसी ही रही, किन्तु उसके बाद भी जब लोगों ने फ़ौजियों की वर्दियाँ फाड़ना रोका ही नहीं, तो बहुत हंगामा हुआ। फ़ौजी थे डेढ़ सौ। काटाहट वाले थे कई हजार। थोड़ी ही देर में अनेक फ़ौजी केवल कच्छे पहने हुए भागते नज़र आए! अब उन्हें जनता को पकड़कर ट्रकों में बिठाने का होश नहीं था!

एक ट्रक, कि जिसमें अनेक अधनंगे फ़ौजी लद चुके थे, अचानक दुर्घटना

फिर हो गया और काटाहट में हर्ष मनाने लगा। मुख्य प्रतिनिधि ने दूध के
इटर को जोर-जोर से पुकारा, लेकिन उन स्थितियों में सुनता कौन था!
तब दूध बना आया, फिर भी आगे ही दूध मांग लगा। काटाहट में एक
भी कोई शेष न रहा। तब अन्तिम दूध मांग रहा था मुख्य प्रतिनिधि ने भी
लगे तब जाता देकर समझा।

धीरे से काटाहट के लोग हँसते और तालियाँ पीटते रहे।

●●

काटाहट में सार्वजनिक सभा आयोजित की गई। एक-एक व्यक्ति के
पर गोलियों के कपड़े फाड़-फाड़ कर फुला रहे थे। एक-एक व्यक्ति की मांग
भी हुई थी। एक-एक व्यक्ति बहुत खुश था।

मोना बोली, "हो सकता है, वे फिर आएं।"

तरुणकुमार ने कहा, "इस बार, हो सकता है कि वे घातक हथियारों से
लैस होकर आएं।"

"कोई बात नहीं!" लक्ष्मणस्वरूप ने ऐलान किया, "हम मिट जायेंगे,
लेकिन काटाहट नहीं छोड़ेंगे।"

"काटाहट हमारा है।" "काटाहट हमारा है।" के नारे उठने लगे।

नारे शान्त होने पर नगरपति ने गम्भीर स्वर में कहा, "दोस्तो! जहाँ
तक मेरी जानकारी है, आततायियों के कपड़े फाड़ना कानूनन कोई अपराध
नहीं है, लेकिन हो सकता है कि पृथ्वी वाले अपने संविधान में संशोधन करें—
ताकि काटाहट वालों को अपराधी घोषित किया जा सके। जैसी भी स्थिति
सामने आयेगी, हमें उसका मुकाबला करना है। मुमकिन यह भी है कि वे
काटाहट का पिण्ड छोड़ दें और किसी अन्य बस्ती को उजाड़ने का प्रयास करें।
पूरी सम्भावना है कि वह अन्य बस्ती भी, काटाहट की देखादेखी, उजड़ने से
इन्कार कर दे और आत्म-रक्षा का कोई विचित्र उपाय निकाले। आज ब्रह्माण्ड
में मानव ने एक और विजय पाई है। आज की हमारी गतिविधियाँ इतिहास
को नया मोड़ दिए बिना नहीं रहेंगी। शायद उस संस्कृति की शुरुआत आज
से हो चुकी है, कि जिस में हर बात का मूल्यांकन केवल आँकड़ों से नहीं
जायेगा, कि जिसमें हर पुरातन को केवल इसलिए नहीं त्याग दिया

जायेगा कि वह पुरातन है।"

मुश्किल से कुछ घण्टे बीते होंगे कि एक ट्रक काटाहट की ओर बढ़ता दिखाई दिया। क्या वह ट्रक काटाहट पर बमबारी करेगा? काटाहट के साथ-साथ, यहाँ के निवासियों को भी, जिन्दा भून देगा?

ट्रक रुका।

लोगों ने पहचाना—ट्रक में से अनेक फोटोग्राफर और पत्रकार उतरने लगे। वे सब उन अखबारों के प्रतिनिधि थे, जो मंगल पर प्रकाशित होते थे और जिनके विशेष संस्करण पृथ्वी पर भी निकलते थे···

काटाहट के नगरपति, भूतपूर्व नगरपति, काटाहट की सर्वाधिक सुन्दर कुमारिका सुश्री मोना सिंह, सर्वाधिक प्रबुद्ध व्यक्ति लक्ष्मणस्वरूप, सर्वाधिक प्रयोगशील युवक तरुणकुमार आदि-आदि-आदि के दनादन फोटो खींचे गए। फिर सब के साक्षात्कार लिए जाने लगे। अनोखी, रोमांचक गतिविधियों से भर उठा काटाहट! जो कुछ हुआ था, उसे बताते समय, बताने वाले हँस रहे थे और साक्षात्कार लेने वाले भी हँस रहे थे। हँसी के मारे फोटोग्राफरों के हाथ बार-बार हिल जाते और एक ही फोटो उन्हें दो-दो, तीन-तीन बार खींचना पड़ता। वाह-वाह! जो हुआ था, क्या कहना उसका!

अस्थाके के बुलेटिनों में काटाहट निवासियों की भयंकर बुराई छापी गई। कहा गया कि जो कुछ उन्होंने किया है, उससे अराजकता का जन्म होगा—वगैरह। वे बुलेटिन अपनी जगह सही थे।

लेकिन क्या काटाहट-निवासी भी अपनी जगह सही नहीं थे?

●